प्रकाशक—
स्वामी भास्करेश्वरानन्द,
अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण आश्रम,
धन्तोली, नागपुर–१, म. प्र.

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला
पुष्प ५५ वाँ

मुद्रक—
डी. पी. देशमुख
बजरंग मुद्रणालय,
कर्नलबाग, नागपुर–२.

प्राक्कथन



भगवान ने गीता में प्रतिज्ञा की है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होगी और अधर्म का अभ्युत्थान होगा, तब-तब धर्म के संस्थापन के लिए मैं जन्म ग्रहण करूँगा। और जब कभी भगवान इस धराधाम पर अवतीर्ण होते हैं, तब अपनी लीला की पुष्टि के हेतु अपने पार्षदों को भी साथ लाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी का काल धर्म की ग्लानि का काल रहा। जड़विज्ञान उतना प्रभावशाली कभी न था, जितना वह इस काल में रहा। प्रकृति से अतीत एक अचिन्त्य दैवी शक्ति पर अनास्था उतनी कभी न थी, जितनी इस समय। इसी लिए श्रीभगवान इस बार सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न होकर इस जगतीतल पर श्रीरामकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए और साथ आए उनकी लीला के सहायक स्वामी विवेकानन्द-प्रमुख उनके शिष्यगण। प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्हीं के एक अन्तरंग गृहस्थ शिष्य साधु नागमहाशय की जीवनी लिपिबद्ध की गई है।

स्वामी विवेकानन्द और साधु नागमहाशय दो ओर-छोर थे। एक यदि ज्ञान और 'महान् अहं' के मूर्तिमान प्रतीक थे, तो दूसरे भक्ति और 'महान् त्वं' के। बंगाल के प्रसिद्ध नाटककार श्री गिरीशचन्द्र घोष ने ठीक ही कहा है, "नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) और नागमहाशय को बांधते समय महामाया बड़ी विपत्ति में पड़ गई। वह नरेन्द्र को जितना बांधती, नरेन्द्र उतने ही बड़े हो जाते और माया की रस्सी छोटी पड़ जाती। अन्त में नरेन्द्र इतने बड़े हो गए कि माया को अपना-सा मुँह लेकर लौट जाना पड़ा। नागमहाशय को भी महामाया ने बांधना आरम्भ

किया। पर वह जितना बाँधने लगी, नागमहाशय उतने ही छोटे होने लगे, और अन्त में इतने छोटे हो गए कि माया-जाल में से निकलकर बाहर आ गए!"

अपने गुरुदेव भगवान श्रीरामकृष्ण देव की आज्ञा शिरोधार्य कर नागमहाशय ने अपना सम्पूर्ण जीवन गृहस्थ के रूप में बिताया, पर वे आजन्म संन्यास-धर्म का पालन करते रहे। उनके ज्वलन्त वैराग्य और पावित्र्य को देखकर स्वामी विवेकानन्द कहते, "त्याग और इन्द्रिय-संयम में ये हम लोगों से बढ़कर हैं।" दया और प्राणिमात्र पर प्रेम उनमें कूट-कूटकर भरा था। उन्होंने अपना अस्तित्व सम्पूर्ण रूप से उस महान् अस्तित्व में मिला दिया था, और कभी-कभी तो वे इस एकात्म-भाव में इतने गहरे डूब जाते कि श्वास-प्रश्वास से हवा में विचरनेवाले कीटाणु कहीं मर न जायँ, इस आशंका से उनकी साँस ही बन्द हो जाती! गिरीशचन्द्र घोष ठीक ही कहते थे, "एकमात्र नागमहाशय ही 'अहिंसा परमो धर्मः' के ज्वलन्त दृष्टान्त हो सकते हैं।"

मूल बँगला-जीवनी श्री शरच्चन्द्र चक्रवर्ती द्वारा लिखी गई थी। उन्हें नागमहाशय के बहुत ही घनिष्ठ सम्पर्क में आने का महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हिन्दी-सन्त-साहित्य में एक ऐसी जीवनी की बड़ी आवश्यकता थी, जिससे हम यह सीख सकें कि किस प्रकार वर्तमान समाज और सांसारिक परिस्थितियों के बीच भी संन्यास और परम आध्यात्मिकता से पूर्ण जीवन बिताया जा सकता है। नागमहाशय का यह पावन जीवन-चरित्र इस कमी को पूरा करने की क्षमता रखता है।

इस रूप में उनकी जीवनी को प्रस्तुत करने का श्रेय पं. द्वारकानाथजी तिवारी, बी. ए., एल-एल. बी., को है। उनके

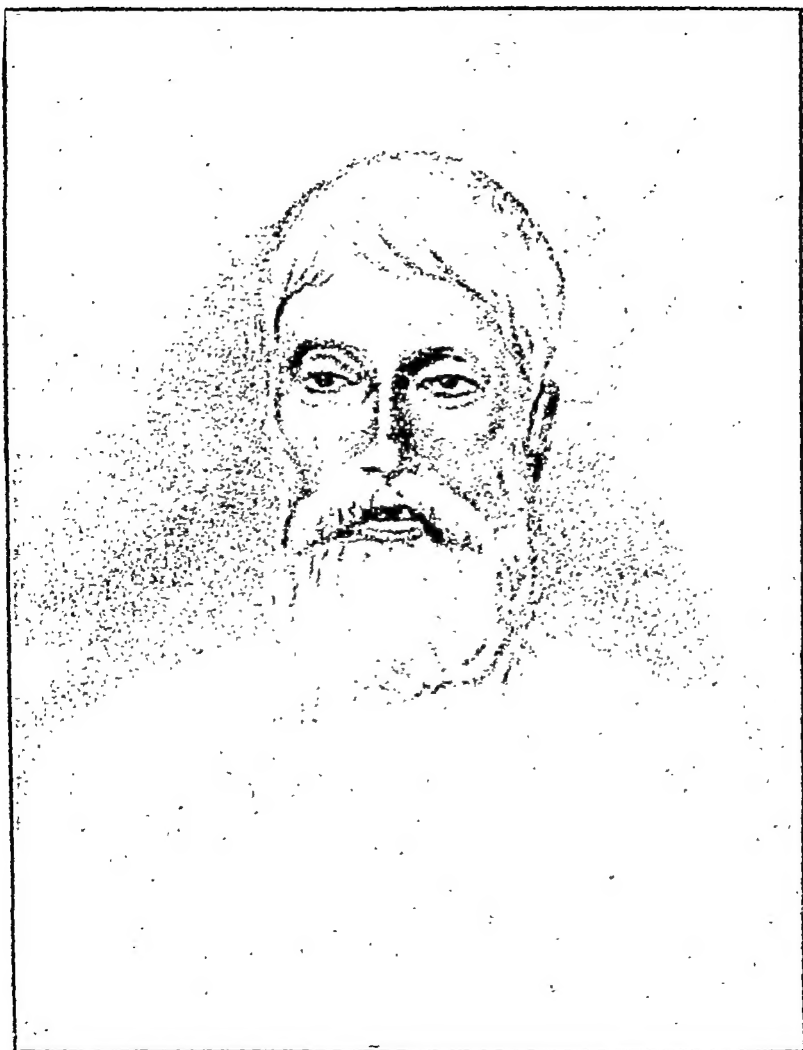
इस वहुमूल्य कार्य के लिए हम हृदय से उनका आभार मानते हैं।

हमारा विश्वास है, पाठक इस नए प्रकाशन से जीवन को सुचारु रूप से गढ़ने के लिए एक नया उत्साह और नई प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

नागपुर,
१५–१–१९५६

प्रकाशक

अनुक्रमणिका



साधु नाग महाशय

योऽहंभाव-विवर्जितस्तपशशि-ज्योत्स्नाभिरुद्भासितः
भोगासक्ति-निराकृतो गुरु-कृपा-मन्त्रेण सम्प्राणितः ।
दैन्यादम्भनिकेतनं गुरुपदे भृंगायमानो मुदा
वन्देऽहं शिरसा सदा तममरं नागाख्यमुद्धारकम् ॥

—"जो अहं-भाव से विवर्जित हैं, तपस्यारूपी चन्द्रमा की निर्मल ज्योत्स्ना से उद्भासित हैं, जिन्होंने भोग-आसक्ति को नष्ट कर डाला है, जिनका जीवन गुरु-कृपा-रूपी मन्त्र से हरा-भरा हो गया है, जो दैन्य, अदम्भ आदि दैवी सम्पदाओं के आवास हैं और जो श्रीगुरु के चरणकमलों में भ्रमर के समान आनन्द से गुंजार करते रहते हैं, उन 'नाग' नामधारी उद्धारकर्ता, अमर पुरुष को मैं बारम्बार साष्टांग प्रणाम करता हूँ ।"

साधु नागमहाशय

प्रथम अध्याय

जन्म और बाल्यकाल

जिन महापुरुष का जीवन-वृत्तान्त लिखना मैं प्रारम्भ कर रहा हूँ, उनके सम्वन्ध में पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्दजी का यह उद्‌गार है—

"पृथ्वी के वहुतेरे भागों में मैंने प्रवास किया, पर नाग-महाशय के समान महापुरुष मुझे कहीं दिखाई न दिए।"

पूर्व-वंगाल में नारायणगंज वन्दरस्थान से पश्चिम की ओर लगभग एक मील की दूरी पर देवभोग नामक एक छोटा-सा ग्राम है। वहीं २१ अगस्त १८४६ ईस्वी को नागमहाशय का जन्म हुआ। नागमहाशय का पूरा नाम दुर्गाचरण नाग था, पर वे सर्वत्र 'नागमहाशय' नाम से विख्यात थे, अतः इस पुस्तक में भी उनका इसी नाम से उल्लेख किया जायगा। नागमहाशय के पिता का नाम दीनदयाल और माता का नाम त्रिपुरासुन्दरी था। दीनदयाल के पिता प्राणकृष्ण और माता रुक्मिणी देवी थीं। इनका आदि-स्थान तिलारदी था। देवभोग ग्राम में ये लोग तीन पीढ़ियों से वसे हुए थे। दीनदयाल के सिवाय प्राणकृष्ण की दो पुत्रियाँ भी थीं। उनमें से जेठी भग-वती नवें वर्ष में विधवा हो जाने के कारण पिता के ही घर पर रहती थी। कनिष्ठ कन्या भारती के सम्वन्ध में विशेष जान-

कारी उपलब्ध नहीं है। सुनते हैं कि वह पितृगृह में प्रायः आती नहीं थी और भगवती के पहले ही उसकी मृत्यु हो गई।

नागमहाशय के जन्म के चार वर्ष उपरान्त उनकी वहिन शारदामणि का जन्म हुआ। उसके दो वर्ष पश्चात् दीनदयाल के और एक कन्या हुई, जो चार महीने से अधिक जीवित नहीं रही। इसके दो वर्ष वाद दीनदयाल के और एक पुत्र हुआ। उसके जन्म के अनन्तर दीनदयाल की पत्नी का सूतिका रोग से देहावसान हो गया और नवजात वालक भी एक मास के वाद इस संसार से चल वसा। त्रिपुरासुन्दरी ने मरते समय अपनी ननद भगवती की गोद में अपनी दोनों सन्ततियों को डालकर सुखपूर्वक देह छोड़ी थी। माता की मृत्यु के समय नागमहाशय आठ वर्ष के थे और शारदामणि चार वर्ष की थी। दीनदयाल ने द्वितीय विवाह नहीं किया। वालविधवा भगवती ने अपने भाई के पुत्र और पुत्री का पालन-पोपण वड़े लाड़-प्यार से किया। विशेपकर नागमहाशय पर उसका प्यार इतना अधिक था कि जव-जव नागमहाशय को उसके प्रेम का स्मरण हो आता, वे कहा करते, "यह वुआ ही मेरी जन्म-जन्मान्तर की माता थी।"

दीनदयाल देव-द्विज में भक्ति रखनेवाले एक निष्ठावान् हिन्दू थे। वे कलकत्ते की कुमारटोली में श्रीयुत राजकुमार और श्रीयुत हरिचरण पाल चौधरी के यहाँ नौकरी करते थे। रहने के लिए कुमारटोली में उनका खपरैल का एक छोटासा घर था। पालवावुओं और दीनदयाल का सम्वन्ध मालिक और नौकर का होते हुए भी वे लोग दीनदयाल को अपने कुटुम्ब का ही एक जन समझते थे। धर्मभीरु, सत्यनिष्ठ और निर्लोभी दीनदयाल पर पालवावुओं का वहुत विश्वास था। उन लोगों

ने दीनदयाल से कभी हिसाव तलव नहीं किया। एक वार हिसाव में कुछ हजार रुपयों का गोलमाल हो गया। पालवावुओं का तो विश्वास था कि दीनदयाल कभी चोरी नहीं करेगा। अतः उन्होंने सभी रुपये फुटकर-खर्च में लिखकर हिसाव ठीक कर लेने का आदेश दिया। लगभग एक वर्ष पश्चात् उन रुपयों का हिसाव मिल गया। इससे दीनदयाल पर पालवावुओं का विश्वास और भी अधिक दृढ़ हो गया। उस समय से दीनदयाल की जिससे चार पैसे की आमदनी हो जाय, इस ओर पालवावुओं की विशेष दृष्टि रहने लगी।

निम्नलिखित घटना से दीनदयाल के निर्लोभी स्वभाव का परिचय मिलता है। पालवावुओं का नमक का व्यापार था और वे कभी-कभी नमक जलमार्ग से नारायणगंज भेजा करते थे। उन दिनों जहाज का प्रवन्ध ठीक नहीं था और नौका-मार्ग से जाते समय सुन्दरवन के पास लुटेरों का भय था। इसलिए प्रत्येक नाव पर एक साहसी और विश्वसनीय नौकर को जाना पड़ता था। एक समय दीनदयाल को जाना पड़ा। नाव सुन्दर-वन में से होकर जा रही थी और किसी निरापद स्थान में पहुँचने के पूर्व ही सन्ध्या हो गई। दीनदयाल ने आगे वढ़ना ठीक न समझा। पास ही में एक वड़ी टूटी-फूटी इमारत और उसके समीप किसान के दो घर देखकर उन्होंने वहीं पर नाव वाँधने का आदेश दिया। रात को नाविक लोग खा-पीकर सोने लगे और दीनदयाल हाथ में लाठी लिए तमाखू पीते जागते वैठे रहे। धीरे-धीरे रात वीत गई। प्रातःकाल लगभग पाँच वजे नौका से उतरकर दीनदयाल उस फूटी इमारत की आड़ में शौच के लिए वैठे। स्वभाव के कुछ चंचल होने के कारण वे वैठे-वैठे

सहज ही अपनी उँगलियों से आस-पास की मिट्टी कुरेदने लगे। कुछ खोदने से ही उन्हें हाथ में कुछ सिक्कों के स्पर्श होने का आभास हुआ। उन्होंने उत्सुकता से मिट्टी और हटाई, तो देखते क्या हैं—एक घड़ा-भर मोहर! उनमें से दो-चार मोहरों को निकालकर देखने पर उन्हें पता चला कि वे सब प्राचीन काल की हैं। उन्होंने उन मोहरों को घड़े में डालकर ऊपर से मिट्टी पाट दी और झटपट उठकर नाविकों के पास आकर बोले, "यह स्थान बहुत भयप्रद दिखता है, यहाँ से नाव शीघ्र रवाना करो।" नाविक बोले, "शौच आदि से निपटकर चलेंगे।" पर उस ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। अतः नाव खोल दी गई। वहाँ से दो-तीन कोस चले जाने के बाद उन्होंने नौका बाँधने के लिए कहा। इस घटना के बारे में दीनदयाल ने कहा था, "इस गुप्त धन पर मुझे लोभ हो गया था, पर मन में आया कि यदि यह धन किसी ब्राह्मण का होगा, तो फिर मुझे ब्रह्मस्व-हरण के पाप के कारण अनन्त काल तक नरक भोगना पड़ेगा। उस स्थान पर और अधिक समय तक रहने से कहीं लोभ फिर से न जग जाय, इस डर से मैंने उस स्थान को तत्काल त्याग दिया।"

नागमहाशय के बचपन के सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। शैशव से ही वे बड़े मिष्टभाषी, सुशील और विनयशील थे। उनका शरीर सुडौल और सुन्दर था। उनके सिर पर लम्बे-लम्बे केश बड़े सुन्दर लगते थे। निर्धन परिवार में जन्म होने के कारण उनके शरीर पर चाँदी की बालियों के सिवाय और कोई गहना नहीं था। फिर भी, जब वह दीर्घकेश, मधुर स्वभाववाला बालक नाच-नाचकर खेलता रहता, तो उसे

देखकर कोई भी मुग्ध हो जाता था। पड़ोस की सयानी स्त्रियाँ उस प्रिय-दर्शन बालक को देखते ही गोदी में लेकर उसका दुलार करने लगतीं, पर यदि कोई उसे कुछ खाने को देता, तो वह कभी भी ग्रहण नहीं करता था।

यह शान्त-स्वभाव बालक सन्ध्या समय अकेला बैठकर तारों-भरे आकाश की ओर एकटक देखा करता। कभी-कभी अपनी बुआ से आग्रह करता, "चलो बुआ! (आकाश की ओर उँगली दिखाकर) उस देश में चलें, यहाँ रहना अब मुझे अच्छा नहीं लगता।" चन्द्रोदय होने पर बालक आनन्द में मग्न हो ताली बजाते हुए नाच-नाचकर इधर-उधर घूमने लगता। वृक्षों को हिलते देख उसे ऐसा लगता, मानो वे उसे खेलने के लिए बुला रहे हों; वह भगवती से कहता, "बुआ, मैं उनके साथ खेलूँगा।" और यह कहकर वह हिलते-डुलते हुए वृक्षों के समान झूम-झूमकर अपूर्व भंगी के साथ नाचने लगता। वह मनोहर नृत्य देखकर भगवती आनन्द में अपना देह-भान भूल जातीं और बालक का बारम्बार चुम्बन लेतीं।

भगवती पौराणिक कथाएँ कहने में बड़ी निपुण थीं और वे बालक को महाभारत एवं भागवत के आख्यान सुनाया करतीं। बालक कहानी सुनते-सुनते सो जाता। यदि किसी दिन घर के कार्यों से थक जाने के कारण भगवती के लिए कहानी बताना असम्भव हो जाता, तो उस दिन बालक को नींद ही नहीं आती और वह हठ करके भगवती के पीछे पड़ जाता। आखिर कोई छोटी-मोटी कहानी सुनाने पर ही वे छुटकारा पातीं। वे जो कहानियाँ सुनातीं, कभी-कभी बालक उन्हीं को स्वप्न में देखने लगता, और किसी-किसी दिन स्वप्न में देवी-

देवताओं की मूर्ति देखकर वह भयभीत हो जाग उठता। पास ही में दिन-भर की थकी-माँदी भगवती पड़ी रहतीं, पर अत्यन्त डर जाने पर भी वह उन्हें नहीं जगाता और चुपचाप पास में बैठा रहता। सवेरा होने पर वालक जब अपना स्वप्न भगवती को बतलाता, तब वे सुनकर आश्चर्यचकित हो जातीं।

बचपन में नागमहाशय को खेलने में विशेष दिलचस्पी नहीं थी, तो भी मित्रों के आग्रह से उन्हें कभी-कभी खेलना पड़ता था। पर खेल में भी झूठ बोलना उन्हें पसन्द नहीं था। खेल में यदि कोई झूठ बोलता, तो वे उससे बातें करना बन्द कर देते, और जब तक वह अनुतप्त हो झूठ न बोलने की प्रतिज्ञा नहीं कर लेता, तब तक उससे मित्रता स्थगित रहा करती। बचपन में भी नागमहाशय किसी से नहीं लड़ते थे। उनके साथियों में यदि कभी झगड़ा हो जाता, तो वे मध्यस्थ बनकर इतने सुन्दर ढंग से निपटारा कर देते कि दोनों पक्षों को बराबर सन्तोष हो जाता और सब कोई उन्हें अपना अगुवा मान लेते। खेलते समय या हँसी में भी वे कभी झूठ नहीं बोलते थे। बिलकुल छुटपन से ही उनके मनोहर चरित्र पर आबाल-वृद्ध-वनिता सभी समान रूप से मुग्ध थे। देवभोग में आज भी ऐसे लोग जीवित हैं, जो एक-स्वर से कहते हैं, "दीनदयाल के पुत्र के समान सुशील, सच्चरित्र और नम्र बालक आज तक हमारे देखने में नहीं आया।"

माता की मृत्यु के बाद भगवती के लाड़-प्यार में और भी कुछ वर्ष बीत गए। नागमहाशय की उम्र के साथ-साथ उनकी ज्ञान-पिपासा भी बढ़ने लगी। आज के समान उस समय शिक्षा का प्रबन्ध नहीं था। नारायणगंज में एक ही बंगाली शाला थी। नागमहाशय वहीं पढ़ने जाने लगे। पर वहाँ केवल

तीन ही कक्षाएँ थीं। अतः तीनों कक्षाएँ पढ़ चुकने के पश्चात् उनकी शिक्षा रुक गई। इससे उन्हें वहुत वुरा लगा। दुर्गा-पूजा के समय दीनदयाल जव अपने घर आए, तव नागमहाशय ने पढ़ने के लिए कलकत्ता जाने की इच्छा प्रकट की। पर दीनदयाल राजी न हुए। उन्होंने कहा, "इस साधारण आय में तो कलकत्ते में पढ़ाने का खर्च मैं नहीं दे सकता।" यह सुन नागमहाशय अत्यन्त दुःखित हुए। कलकत्ते में शिक्षा प्राप्त करने की आशा को तिलांजलि देकर वे अव इस वात का पता लगाने लगे कि आस-पास में कहीं शिक्षा का प्रवन्ध हो सकेगा या नहीं। उन्होंने सुना कि नारायणगंज से पाँच कोस की दूरी पर ढाका शहर में वहुत से विद्यालय हैं। पर वहाँ पढ़ने जाने के लिए तो उन्हें रोज दस कोस पैदल चलना पड़ता। अतः भगवती उनके इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुईं। उनके संगी-साथियों ने भी इसका वहुत विरोध किया, पर उन्होंने किसी की एक न सुनी। दूसरे दिन सवेरे ही वे किसी को कुछ न वताकर, धोती के छोर में कुछ चुरमुरे वाँध ढाका की ओर रवाना हो गए। वहाँ विद्यालय की खोज में सारा दिन वीत गया। अन्त में एक वंगाली स्कूल ठीक करके वे घर लौटे। घर पहुँचते रात हो गई। इधर भगवती ने उनकी खोज में सारा गाँव छान डाला। नागमहाशय को घर लौटे देख उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। उन्होंने पहले नागमहाशय को वड़े स्नेह से भोजन कराया और फिर सारा दिन गायव रहने का कारण पूछा। नागमहाशय सारी वात वतलाकर वोले, "कल से ही पढ़ने जाऊँगा, मैंने अव ठीक कर लिया है। सवेरे आठ वजे तक मेरे लिए कुछ वना दिया करना।" वालक का हठ देख भगवती ने इस वात में

अपनी सम्मति दे दी और आशीर्वाद देती हुई बोलीं, "भगवान तेरा कल्याण करें, मार्ग में तुझे कोई विघ्न-बाधा न हो।"

दूसरे दिन स्कूल में भरती होने के लिए कुछ पैसे साथ ले, भोजन करके नागमहाशय आठ बजे ढाका चले गए और वहाँ नार्मल स्कूल में अपना नाम लिखा लिया। इस विद्यालय में उन्होंने पन्द्रह महीने अध्ययन किया। इन पन्द्रह महीनों में वे केवल दो ही दिन स्कूल न जा सके। गर्मी, बरसात और जाड़ा उनके सिर पर से होकर चला गया, पर एक दिन के लिए भी उनका यह अटल अध्यवसाय कम नहीं हुआ। किन्तु शरीर तो है! इस कठोर परिश्रम से उनका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरने लगा। वे कहा करते, "जब मैं ढाका में पढ़ने के लिए जाता था, तब मुझे तनिक भी कष्ट नहीं मालूम पड़ता था। मैं सीधे जंगल के भीतर से होकर चला जाता था। यदि किसी दिन लौटते समय भूख सताने लगती, तो एक पैसे का चना-चबेना लेकर खाते-खाते घर लौट आता था।"

एक दिन घर लौटते समय उन्हें रास्ते में एक भूत दिखाई दिया। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा था, "भूत, प्रेत आदि नीच-योनियों में से कोई भी मिथ्या नहीं है; क्योंकि श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, 'वह सब सत्य है।' जब मैं पैदल ढाका में पढ़ने जाया करता था, तब एक दिन घर लौटते समय रास्ते के किनारे मुझे एक भूत दिखाई दिया। समीप के ही एक बड़े पीपल के वृक्ष से टिककर वह पश्चिम की ओर मुँह किए खड़ा था। मैं अनमना-सा चला आ रहा था। अचानक उसकी ओर मेरी दृष्टि पड़ गई, और बस मैं एकदम नीचे बैठ गया। पर जब मैंने देखा कि वह तो हटता ही नहीं है, तब मन

में आया, 'छि:, कहाँ का भूत ठहरा वह ! मैंने तो उसका कोई अनिष्ट नहीं किया है, फिर वह क्यों मेरा अनिष्ट करेगा ?' ऐसा सोचकर मैं हृदय में साहस भर खड़ा हुआ और आगे बढ़ा। मैं उस वृक्ष के नीचे से होकर निकला, पर वह भूत हिला-डुला तक नहीं। मैं उसे पार करके गया ही था कि मैंने बड़े जोर का अट्टहास सुना। पर मैंने पीछे फिरकर नहीं देखा। ढाका आते-जाते मैंने और दो-तीन बार उसको देखा, पर उसने कभी मुझसे कोई बातचीत नहीं की। बार-बार देखने के कारण अन्त-अन्त में वह तो मुझे एक मनुष्य-जैसा ही लगता था।"

इस स्कूल के एक शिक्षक का नागमहाशय पर पुत्रवत् स्नेह था। नागमहाशय को प्रतिदिन इतनी दूर से पैदल आते देख उन्होंने एक दिन नागमहाशय से कहा, "देखो बेटा, इतना कष्ट उठाकर पढ़ने न आया करो ! या फिर हमारे ही यहाँ रह जाओ, जैसा भी हो मैं तुम्हारा खर्च उठाऊँगा।" नागमहाशय बोले, "मुझे तो कोई कष्ट ही नहीं होता !" उनका पढ़ने पर इस प्रकार अनुराग देखकर उक्त शिक्षक कहा करते, "कौन जाने, यह बालक भविष्य में कितना महान् होगा !" यदि वे शिक्षक जीवित रहते, तो देखते थे कि उनकी भविष्यवाणी किस प्रकार अक्षरशः सत्य हुई थी।

ढाका के नार्मल स्कूल में नागमहाशय ने बहुत ही थोड़ा समय बिताया, पर इसी बीच उन्होंने बंगाली भाषा पर काफी प्रभुता प्राप्त कर ली। उनके अक्षर मोती के दाने के समान सुन्दर थे। उनकी वाक्य-रचना भी सरल, अर्थपूर्ण और हृदय-स्पर्शी रहा करती थी। उस जमाने में उनकी रचना के समान अन्य कोई रचना कदाचित् ही दिखाई देती थी। उनके इस समय

के सारे लेख धर्म और चरित्र-गठन पर रहते थे। बाद में जब वे कलकत्ते में डाक्टरी पढ़ने के लिए आए, उस समय इन रचनाओं को उन्होंने 'बालकों को उपदेश' नामक एक पुस्तक के रूप में छपवाया था। इस पुस्तक के लिखने या छपवाने के सम्बन्ध में उन्होंने कभी किसी को कुछ नहीं बतलाया। यहाँ तक कि उनके परम मित्र सुरेशचन्द्र दत्त भी पुस्तक छपने के पूर्व कुछ न जान सके। पुस्तक छप जाने पर नागमहाशय ने उन्हें उसकी एक प्रति भेंट दी। तत्पश्चात् उन्होंने सारी पुस्तकें अपने गाँव के लड़कों को बाँट दीं। देवभोग में इस पुस्तक की एक-दो प्रतियाँ आज भी देखने को मिलती हैं।

नागमहाशय के परम भक्त श्रीयुत हरप्रसन्न मजुमदार की पत्नी ने नागमहाशय के मुख से उनके बाल्य-जीवन के सम्बन्ध में अनेक बातें सुनी थीं। उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक को एक पत्र में उन्हीं बातों का कुछ अंश लिख भेजा था। हम वही नीचे उद्धृत कर रहे हैं:—

"बाबा (नागमहाशय) के बाल्य-जीवन के सम्बन्ध में अथवा परवर्ती घटनाओं की मुझे कोई जानकारी नहीं है और न मैंने कभी उन घटनाओं को लिपिबद्ध ही किया। पर हाँ, उनके दर्शन होने के बाद से, उन्होंने उपदेश देते समय मुझे जो-जो बातें बताई थीं, उनमें की कुछ-कुछ घटनाएँ मैंने स्मरण के लिए लिख रखी थीं। किन्तु उनसे उनके जीवन की कोई विशेष घटना पर प्रकाश नहीं पड़ता। फिर भी उन्होंने स्वयं जो एक-दो घटनाएँ मुझे बतलाई थीं, तुम्हारे अनुरोध से उन्हीं को लिख भेज रही हूँ। हो सकता है, तुम्हें ये घटनाएँ मालूम भी हों। पर तुम्हारा अनुरोध टाल देने की मुझमें शक्ति नहीं; क्योंकि मैं

जानती हूँ, तुम उनके वड़े स्नेह-पात्र थे। धर्म के सम्वन्ध में यदि मेरी सहायता से किसी का कुछ उपकार हो, तो मैं सहर्ष विना किसी हिचकिचाहट के करूँगी। उससे यदि मेरे स्वार्थ में धक्का भी लगे अथवा यदि तुम लोगों की सहायता करने के लिए मुझे सम्पत्ति का भी त्याग करना पड़े, तो मैं अपने को धन्य समझूँगी।

"सच वोलने के वारे में उन्होंने स्वयं एक दिन कहा था कि वचपन में उनके कुछ हमजोली मित्र दूसरे पक्ष को हराने के लिए एक दिन उनसे एक झूठ वात वोल देने के लिए वार-वार अनुरोध करने लगे। पर उन्होंने वैसा करना अस्वीकार कर दिया। इससे उनके पक्ष की हार हो गई। इस पर उनके मित्रों ने क्रोधित हो उन्हें धान के खेत पर से घसीटा, जिससे उनका सारा शरीर लहूलुहान हो गया। वावा की उस पीड़ा को याद कर आज भी मेरी आँखें भर आती हैं। इस प्रकार विना कारण उन्हें दण्ड दे उनके मित्रों ने ऊपर से यह भी कहा, 'यदि तुम्हारी सचाई से फिर कभी कहीं हमारी हार हुई, तो याद रखना, तुम्हें इससे भी अधिक कष्ट दिया जायगा।' वावा लहूलुहान-शरीर घर लौटे। उनके पिता और वुआ ने उनसे कितना पूछा कि यह कैसे हुआ, पर वावा कुछ न वोले। इस वात को लेकर मुहल्ले-भर में कहीं व्यर्थ का झगड़ा-वखेड़ा न खड़ा हो जाय, इस विचार से उन्होंने मुँह से उस सम्वन्ध में एक वात तक न निकाली।

"१३-१४ वर्ष की उम्र में वे शायद ढाका मेडिकल कालेज में भरती हुए। *

---

* पर श्रद्धेय सुरेशचन्द्र दत्त का कहना है--"यह वात सत्य नहीं है। नागमहाशय ने कलकत्ते के 'कैम्पवेल मेडिकल स्कूल' में भरती हो वहाँ डेढ़ वर्ष अध्ययन किया। वाद में उन्होंने होमियोपैथी सीखी। वे ढाका

"सवेरे-सवेरे भगवती बाबा (नागमहाशय) के लिए चावल में आलू डालकर पका देतीं, और वे वही खाकर पैदल ढाका में पढ़ने चले जाते। फिर शाम को वे पैदल ही अपने गाँव लौट आते। एक दिन घर लौटते समय वे फतुल्ला ग्राम के पास पहुँचे ही थे कि भयानक जोर से आँधी चलने लगी, मूसलाधार वर्षा होने लगी और सब ओर घना अन्धकार छा गया, मानो प्रलय ही होनेवाला हो। फतुल्ला की दुकानें बन्द हो गईं। ऐसे समय यदि कोई पुकारे भी, तो कोई दरवाजा न खोले। फिर, अपने लिए किसी को कष्ट देना बाबा बचपन से ही न जानते थे। अतः वे उस आँधी और तूफान में ही आगे बढ़ने लगे। वैशाख का महीना था। बादलों की भयानक गड़गड़ाहट और इस भीषण आँधी-तूफान से बाबा को बड़ा डर लगने लगा; सब ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था—रास्ता सूझता ही न था। रह-रहकर बिजली चमक उठती थी। बाबा उसी के प्रकाश के सहारे रास्ता देखकर चलने लगे। नारायणगंज के समीप ही श्रीलक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर के पास से होकर जो रास्ता बाबा के घर की ओर जाता है, उसी के किनारे एक तालाब है। चलते-चलते अचानक बाबा का पैर फिसल गया और वे इसी तालाब में गिर पड़े। लाख कोशिश करने पर भी वे उठ न सके। उन्होंने पास उगी

के नार्मल स्कूल में केवल पढ़ने जाते थे। कलकत्ते में जब मेरे साथ उनका परिचय हुआ, तब मैंने देखा कि वे Hiley's Grammar पढ़ सकते थे। उसमें का बहुतसा अंश उन्हें कण्ठस्थ था। पर सब बातों का वे ठीक ढंग से उच्चारण नहीं कर सकते थे। मैं उनसे कहता था, 'तुम्हारे उधर पण्डित होते तो हैं, पर इधर के लोगों के समान अँगरेजी बोल नहीं सकते।' वे मेरे पास भी कभी-कभी अँगरेजी पढ़ा करते थे।"

हुई घास को पकड़कर उठने का प्रयत्न किया, पर सारे प्रयत्न विफल हुए। फिर भी उन्होंने हिम्मत न हारी। उस समय उनके सामने केवल भगवती का ही मुख आने लगा। 'न जाने, बुआ मेरे लिए कितनी व्याकुल हो रही होगी'—ऐसी चिन्ता करते-करते, अन्त में राम-नाम लेते-लेते वे बहुत प्रयत्न के बाद तालाब से बाहर निकलने में समर्थ हुए। तत्पश्चात्, मानो कुछ न हुआ हो इस प्रकार धीरे-धीरे चलते हुए वे घर पहुँचे। इधर भगवती विशेष चिन्तित हो हाथ में लालटेन ले बारम्बार बाहर-भीतर आना-जाना कर रही थीं और उनका नाम ले-लेकर पुकार रही थीं। बाबा ने घर पहुँचने पर इस घटना के सम्बन्ध में भगवती को कुछ भी न बताया। केवल इतना ही कहा, "आज रास्ते में खूब भीग गया, पर कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ।"

धीरे-धीरे नागमहाशय ने किशोर वयस में पदार्पण किया। इस मातृहीन बालक के संसार-बन्धन को दृढ़ करने के लिए भगवती उनके विवाह के लिए प्रयत्न करने लगीं। योग्य पात्री की खोज हो जाने पर उन्होंने कलकत्ते में दीनदयाल के पास सन्देशा भेजा। विक्रमपुर के अन्तर्गत रायजदिया ग्राम के श्रीयुत जगन्नाथ दास की ग्यारह वर्षीया पुत्री प्रसन्नकुमारी के साथ नागमहाशय का विवाह सम्पन्न हुआ। प्रसन्नकुमारी के तीन भाई थे—महेश, हरेन्द्र और भगवानचन्द्र। जगन्नाथ की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी थी।

जिस दिन नागमहाशय का विवाह हुआ, उसी दिन उनकी बहिन शारदा का भी विवाह हुआ—गोधूलि लग्न में भाई का और रात्रि के अन्तिम प्रहर में बहिन का। विवाह के पाँच मास पश्चात् नागमहाशय कलकत्ता आ गए।

द्वितीय अध्याय

कलकत्ते में आगमन

कलकत्ते में नागमहाशय अपने पिता के निवासस्थान पर रहने लगे और कैम्पवेल मेडिकल स्कूल में भरती हो डाक्टरी पढ़ने लगे। पर उनकी अध्ययन की लालसा जितनी तीव्र थी, वह उतनी फलवती न हो सकी। यहाँ भी वे डेढ़ वर्ष से अधिक न पढ़ सके। कैम्पवेल स्कूल छोड़ने का क्या कारण था, यह उनके जीवन की अनेक अज्ञात घटनाओं की ही भाँति अविदित है।

कैम्पबेल स्कूल छोड़कर उन्होंने अब विख्यात डाक्टर बिहारीलाल भादुड़ी के समीप होमियोपैथी सीखना आरम्भ किया। डाक्टर भादुड़ी उनके मधुर चरित्र से दिन-पर-दिन उनकी ओर अधिकाधिक आकृष्ट होने लगे और उनकी अध्ययन की तीव्र लालसा देखकर वे बहुत मन लगाकर उन्हें सिखाने लगे। नागमहाशय को अनुभवजन्य ज्ञान देने के लिए वे उन्हें अपने साथ रोगी देखने ले जाया करते थे। नागमहाशय सवेरे और शाम डाक्टर भादुड़ी के पास पढ़ने जाते और अन्य समय घर पर, पढ़े हुए विषयों की पुनरावृत्ति करते थे। इस प्रकार लगभग दो वर्ष बीत गए।

डाक्टरी शिक्षा के लिए नागमहाशय को अब अधिकांश समय कलकत्ते में ही रहना पड़ता था। उनकी पत्नी भी प्रायः अपने मायके में ही रहा करती थी। इस कारण विवाह के पश्चात् उन्हें पत्नी के साथ रहने का विशेष अवसर नहीं आया। एक साथ रहने का संयोग आने पर भी, उन्हें पत्नी के समीप

जाने में भय-सा प्रतीत होता था। जब वे कलकत्ते से घर आते, तब यदि उनकी पत्नी उस समय देवभोग में रहती, तो उसके साथ कहीं रात बितानी न पड़े, इस डर से वे सन्ध्या होते ही वृक्ष पर चढ़कर बैठे रहते थे। जब तक भगवती यह वचन न दे देतीं कि उनको वे अपने ही कमरे में सोने देंगी, तब तक वे नीचे उतरते ही न थे। दीनदयाल के कलकत्तास्थित निवासस्थान में योगमाया नाम की एक दासी थी। दीनदयाल उसे अपनी पुत्री के समान देखते थे। नागमहाशय उसे "दीदी" कहकर पुकारा करते थे। योगमाया कभी-कभी दीनदयाल के साथ देवभोग जाया करती थी। उसने अपनी आँखों से बहू के प्रति नागमहाशय का ऐसा व्यवहार देखा था, और उसी के द्वारा सुरेशबाबू को सारा वृत्तान्त मालूम हुआ था।

भगवती अपने भतीजे के इस अलौकिक आचरण को देखकर अपने मन को समझाने लगीं, "यदि इस समय उसके मन में पत्नी-प्रेम नहीं है, तो धीरे-धीरे वह अवश्य उत्पन्न हो जायगा।" परन्तु हाय रे दुर्भाग्य! निष्ठुर काल ने उनकी समस्त आशाओं पर पानी फेर दिया—बहू की अकाल मृत्यु हो गई! कलकत्ते में संवाद पहुँचा—बहू पेचिश की बीमारी में चली गई। पत्नी की अकाल मृत्यु से नागमहाशय के हृदय पर चोट पहुँची, पर एक दृष्टि से उन्हें अच्छा भी लगा। भगवान ने संसार-बन्धन तोड़ दिया ऐसा सोचकर वे निश्चिन्त हो गए। पर दीनदयाल को बड़ा मार्मिक आघात पहुँचा। जब उनकी पत्नी मरी, तब यह सोचकर कि पुत्र का विवाह करके मैं अपना उजड़ा संसार फिर से बसा लूँगा, उन्होंने अपना दुबारा विवाह नहीं किया था। पर विधि की गति ही विचित्र है! अब क्या किया जाय?

दीनदयाल ने स्थिर किया कि पुत्र का दूसरा विवाह करेंगे। वे तुरन्त पुत्र को साथ ले देवभोग आए; पर मन के लायक पात्री नहीं मिली। देवभोग में अधिक दिन तक रुके रहना भी सम्भव न था। उन्हें अपनी नौकरी और पुत्र के अभ्यास की चिन्ता थी। अतः वधू खोजने का भार अपने दामाद को सौंपकर वे अपने पुत्र के साथ फिर कलकत्ता आ गए।

नागमहाशय की होमियोपैथी-शिक्षा पुनः आरम्भ हो गई। उन्होंने एक छोटीसी दवाई की पेटी खरीदी और मुहल्ले-मुहल्ले घूमकर वे गरीब रोगियों को दवाई देने लगे। डाक्टर भादुड़ी कहते, "कई असाध्य रोगों में नागमहाशय की सलाह के अनुसार दवा देकर मुझे उत्तम फल मिला है।" औषधि-योजना में नागमहाशय की आश्चर्यजनक निपुणता थी। एक समय नागमहाशय की सास कलकत्ता आई थीं। वे उनकी अद्वितीय चिकित्सा-प्रणाली को देखकर कहतीं, "मेरा दामाद साक्षात् महादेव है; वह जिसको जो दवाई देता है, उसका उसी से कल्याण होता है।" धीरे-धीरे चारों ओर नागमहाशय की ख्याति फैल गई। अपने विद्यार्थी-जीवन में ही ये नवीन चिकित्सक गरीब रोगियों के आश्रय हो गए। उनके घर में क्रमशः रोगियों की भीड़ बढ़ने लगी। यदि चाहते, तो वे अभी से अर्थोपार्जन कर सकते थे, परन्तु उन्होंने वैसा नहीं किया। इस समय की उनकी चिकित्सा व्यवसाय के लिए नहीं थी, थी केवल परोपकार के लिए।

नागमहाशय परोपकार करने का अवसर हाथ से कभी जाने न देते थे। दूसरों के लिए हीन कार्य करते भी वे कभी हिचकते न थे। उनके पिता के मित्र कभी-कभी उनसे हाट-बाजार करा लिया करते थे। नागमहाशय उनकी अनाज की

गठरी, यहाँ तक कि लकड़ी का गट्ठर भी सिर पर रखकर ले आते।

विपत्ति में पड़े मनुष्य की रक्षा करने के लिए नागमहाशय सर्वदा प्रस्तुत रहते थे। हाटखोला मुहल्ले में प्रेमचन्द मुंशी नामक एक धनी व्यक्ति रहता था। अपार धन होते हुए भी वह घर में नौकर-चाकर नहीं रखता था। उसके एक दूर के नाते का भाई था। भोजन बनाने से लेकर पानी खींचना तक सब कुछ उस भाई को ही करना पड़ता था। प्रेमचन्द प्रतिदिन गंगा-स्नान करने जाया करता था। स्नान के पहले एक बार नागमहाशय के यहाँ आना और बार-बार नागमहाशय से हुक्का भरवाकर पीना उसका नित्यकर्म ही हो गया था। तत्पश्चात् वह तेल माँगकर अपनी देह में मलता और फिर गंगा-स्नान कर घर लौट जाता था। इसी प्रकार दिन बीत रहे थे। एक दिन अचानक उसके उस भाई की मृत्यु हो गई। प्रेमचन्द बड़ा कंजूस था। कहीं कुछ खर्च न करना पड़े इस भय से वह मुहल्ले के लोगों से मिलता-जुलता नहीं था। आज वह बड़ी विपत्ति में पड़ गया—मृतक का संस्कार कराने के लिए उसे एक भी व्यक्ति न मिला। यह कायस्थ लखपती पड़ोसियों के द्वार-द्वार पर गया, पर कोई भी उसकी सहायता करने को न आया। अन्त में निरुपाय हो उसने नागमहाशय और उनके पिता की शरण ली। तब पिता और पुत्र ने उस अन्त्य-विधि में सहायता देकर उसका वह संकट दूर किया।

डाक्टर भादुड़ी के पास लगभग एक वर्ष पढ़ने के पश्चात् नागमहाशय का सुरेशबाबू से परिचय हुआ। सुरेशबाबू उन्हें "मामा" कहकर पुकारते थे; इसका कारण उन्हें अब स्मरण

नहीं है। सुरेशबाबू का जन्म हाटखोला के प्रसिद्ध दत्त-वंश में हुआ था। श्रीरामकृष्ण देव की कृपा प्राप्त करने के पूर्व वे एक ब्राह्मसमाजी थे। एक ओर थे निराकार ब्रह्मवादी सुरेश, जो देवता आदि कुछ नहीं मानते थे, और दूसरी ओर थे देव-द्विज के प्रति अटल श्रद्धापरायण, कट्टर हिन्दू नागमहाशय। कभी-कभी उन दोनों में घोर वाग्युद्ध छिड़ जाता था। नागमहाशय कहते, "हिन्दू के देवी-देवता भी सत्य हैं और ब्रह्मवाद भी सत्य है। पर हाँ, बहुत साधन-भजन के बाद तब कहीं जन्म-जन्मान्तर में जीव को ब्रह्मज्ञान हो सकता है, पर ऐसे ब्रह्मज्ञानी लाखों में एक-दो भी होते हैं या नहीं, सन्देह है।" फिर कहते, "तो क्या तुम वेद, पुराण, तन्त्र, मन्त्र आदि को मिथ्या कहना चाहते हो? यह ठीक है कि ब्रह्मज्ञान ही चरम लक्ष्य है, पर इन सबमें से होकर गए बिना उसकी प्राप्ति असम्भव है। महामाया यदि कृपा करके मार्ग न छोड़ दे, तो किसकी बिसात कि ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सके!" सुरेशबाबू मुँह से तो तीखा उत्तर दे देते, "रहने दो, मामा, तुम्हारे शास्त्र-बास्त्र को, मैं वह सब नहीं मानता," पर जब वे नागमहाशय को प्रत्येक देवी-देवता के सम्मुख साष्टांग प्रणिपात करते देखते और ब्राह्मणों के प्रति उनकी अचल श्रद्धा का दर्शन करते, तब वे मन-ही-मन कहने लगते, 'इस प्रकार के विश्वास से शीघ्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो सकता है, इसमें भला सन्देह क्या?'

सुरेशबाबू प्रतिदिन सन्ध्या समय नागमहाशय के निवास-स्थान पर जाया करते थे। प्रायः रोज ही उन दोनों में इस प्रकार वाद-विवाद हुआ करता, पर कोई भी दूसरे को अपने मत में नहीं ला सकता था। ये दो परस्पर-विरोधी स्वभाववाले एक

दूसरे के प्रति पहले कैसे आकृष्ट हो गए, कौन जाने ? पर पहले दिन के परिचय से ही वे दोनों जीवनव्यापी सौहार्द के सूत्र से बँध गए थे। एक दूसरे से भेंट होने पर उनमें भगवत्-चर्चा छोड़ और कोई बातचीत नहीं होती थी।

सुरेशबाबू कभी-कभी नागमहाशय को केशवचन्द्र सेन के समाज में ले जाया करते थे। केशव की वक्तृता सुनकर नागमहाशय मुग्ध हो जाते, पर समाज के आचार-व्यवहार उन्हें पसन्द न थे। ब्राह्मसमाज द्वारा प्रकाशित 'चैतन्य-चरित', 'रूप-सनातन', 'मुसलमान साधुओं का जीवन' आदि ग्रन्थ वे बड़े चाव से पढ़ते थे। नवविधान समाज के "आमाय दे मा पागल करे" * वाले गीत को वे तन्मय होकर गाते थे, पर उनका स्वर उतना अच्छा नहीं था।

सुरेशबाबू कहते, प्रथम भेंट के समय से ही यह दिखलाई दिया कि नागमहाशय का जीवन पूर्ण निष्कलंक है। बचपन से ही वे सदाचारी और धर्मनिष्ठ थे। नागमहाशय ने जन्म-भर सब प्रकार के देशाचार, कुलाचार और गृहस्थाचार का, बिना टालमटोल किए, पालन किया। कहते हैं, बालकपन में उन्हें हातिमताई का किस्सा बड़ा प्यारा था। विश्वास और ईश्वरानुराग उनमें श्वासोच्छ्वास के समान सहज-सिद्ध हो गया था। एक समय उनके कुछ मित्र नास्तिक मत की पुस्तकों का अध्ययन कर नास्तिक मत का प्रचार करने लगे। नागमहाशय का उनसे कभी-कभी प्रबल वाद-विवाद हो जाता और एकाध बार यद्यपि वे तर्क की दृष्टि से पराजित हो भी जाते, तो भी दृढ़ता के साथ कहते, "ईश्वर के अस्तित्व में मेरी तिलमात्र शंका नहीं है।" यह

* माँ, (तू अपने प्रेम में) मुझे पागल बना दे।

वात उनके छुटपन की है। बाद में तो वे वारम्वार कहा करते, "जो वस्तु प्रत्यक्ष है, उसके विषय में तर्क और विचार की क्या आवश्यकता ? ईश्वर तो सूर्य के समान स्वयंप्रकाश है।"

अब इस समय से नागमहाशय का मन डाक्टरी की शिक्षा से उचट गया। उनका बहुतसा समय शास्त्र-चर्चा में व्यतीत होने लगा। परन्तु पिता के कहने के कारण वे डा० भादुड़ी के पास जाना एकदम वन्द नहीं कर सके। नागमहाशय संस्कृत भाषा नहीं जानते थे। जिन शास्त्रों का बँगला अनुवाद हुआ रहता, उन ग्रन्थों को वे वड़े प्रेम के साथ पढ़ा करते। किसी पण्डित से भेंट होने पर वे वड़े आग्रह के साथ उनसे शास्त्र का मर्म समझ लिया करते। वे नित्य गंगा-स्नान करते और एकादशी का व्रत किया करते। वे प्रतिदिन सायंकाल कुमारटोली के पासवाले काशी मित्र के श्मशानघाट की ओर टहलने जाते और कभी-कभी वहुत रात तक चिन्तातुर अन्तःकरण से वहीं वैठे रहते। गम्भीर रात्रि ! धू-धू करके चिता जल रही है ! श्मशान में पीपल के पत्तों के हिलने की आवाज और गंगाजी के प्रवाह का गम्भीर नाद—दोनों एक साथ मिलकर मानो जीवन-मरण के करुणापूर्ण गीत गा रहे हैं—शब्दहीन गीत, फिर भी मर्मस्पर्शी ! नाग-महाशय वैठे-वैठे विचार करते, "अनित्य, अनित्य, सभी तो अनित्य है ! एकमात्र सत्य हैं भगवान ! उनकी प्राप्ति विना यह जीवन अर्थहीन है। उनकी प्राप्ति कैसे हो ? कौन मुझे मार्ग दिखायगा ?"

काशी मित्र के श्मशान में कभी-कभी साधु-संन्यासी साधक आते थे। नागमहाशय व्याकुल अन्तःकरण से उनसे अपने मन का प्रश्न पूछा करते, पर कोई भी ठीक-ठीक उत्तर न दे सका।

तब नागमहाशय समझ गए कि बहुतेरे साधक सिद्धि-प्राप्ति के पीछे पड़े हुए हैं, उनका ध्येय पराभक्ति प्राप्त करना नहीं है। एक दिन उस श्मशान में उनकी एक तान्त्रिक से भेंट हो गई। 'वामाचार साधना क्या है'—यह पूछने पर वह तान्त्रिक नाना प्रकार की वीभत्स बातों का वर्णन करने लगा। उसकी वह व्याख्या सुनकर नागमहाशय उससे बोले, "आपको अभी भी बहुत विचार और अभ्यास करना होगा। आप तन्त्र का मर्म कुछ भी समझ नहीं सके हैं।" इस प्रकार के साधुओं को देखकर धर्म में आस्था या श्रद्धा बढ़ना तो दूर रहा, उनका मन कभी-कभी संशयग्रस्त होने लगता था। केवल एक वृद्ध ब्राह्मण ही उनके श्रद्धाभाजन हुएथे। ये ब्राह्मण तान्त्रिक-संन्यास लेकर श्मशान में साधना करते थे। वे उदार स्वभाव के थे, उनमें भेद-बुद्धि नहीं थी और वे अन्तर्दृष्टिसम्पन्न थे। साधन-ग्रन्थों में बताए अनुसार वे नियमित रूप से मद्य आदि का भी व्यवहार करते थे। उन्होंने नागमहाशय को तान्त्रिक साधनों का गूढ़ मर्म और षड्चक्र-रहस्य बड़े सरल और विशद रूप से समझा दिया था। जब नागमहाशय ने भी तन्त्र मार्ग के अनुसरण करने की अपनी इच्छा प्रकट की, तो उन वृद्ध ब्राह्मण ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, "माँ जगदम्बा शीघ्र ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगी।" इनके सम्बन्ध में नागमहाशय कहा करते थे, "वे साधन-मार्ग में काफी आगे बढ़ गए थे। फलस्वरूप उन्हें सज्ञान गंगा-लाभ हुआ था।"

उपर्युक्त वृद्ध ब्राह्मण के उपदेशानुसार नागमहाशय कभी-कभी घोर रात्रि में श्मशान में बैठकर जप-ध्यान करते थे। एक दिन ध्यान करते-करते उन्हें शुभ्र ज्योति के दर्शन हुए और

तब से वे नियमित रूप से श्मशान में जाकर जप-ध्यान करने लगे।

यह बात धीरे-धीरे दीनदयाल के कानों में पहुँची। यह जानकर उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने अपने दामाद को शीघ्र ही नागमहाशय के लिए कन्या ढूँढ़ने को पत्र लिखा। दीनदयाल ने सोचा—लड़का अभी तरुण है, संसार का कोई बन्धन नहीं है, इसी लिए वह श्मशान में साधु-संन्यासियों के पीछे भटका करता है। विवाह हो जाने पर यह सब आप-ही-आप बन्द हो जायगा। उधर दीनदयाल के दामाद ने भी शीघ्र ही देवभोग-निवासी रामदयाल भुँइया की ज्येष्ठ कन्या शरत्कामिनी को नागमहाशय के लिए वधू निश्चित करके पत्र लिखा। पर दीनदयाल ने अपने पुत्र के पास ज्योंही विवाह की चर्चा की, त्योंही नागमहाशय बोले, "दुबारा विवाह न करने का मैंने निश्चय कर लिया है।" दीनदयाल ने अनेक प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया, पर सब व्यर्थ हुआ। कभी-कभी बात पराकाष्ठा पर पहुँच जाती थी; दीनदयाल क्रोधित हो उस दिन कुछ नहीं खाते थे, और साथ ही नागमहाशय भी निराहार रहते थे। इस प्रकार दिन बड़ी अशान्तिपूर्वक बीतने लगे। दीनदयाल बोले, "तेरे कारण एक सज्जन को वचन देकर इस बुढ़ापे में मुझे झूठा बनना पड़ा!" नागमहाशय बोले, "आपने एक बार तो मेरा विवाह कर दिया, पर वह बेचारी तो मर गई। अब और किसकी कन्या को लाकर मृत्यु के मुँह में डालना है?" दीनदयाल ने कहा, "जिसके भाग्य में जो रहता है, वही होता है। मैं तेरा पिता हूँ, मेरी आज्ञा न मानने से तेरा कभी मंगल न होगा। मैं तुझे शाप देकर जाऊँगा, जिससे तेरी धार्मिक उन्नति न हो।"

यह सुनकर नागमहाशय बड़े धर्म-संकट में पड़ गए। एक ओर पिता का शाप और दूसरी ओर धर्म-मार्ग ही बन्द होने का डर! स्त्री-संग तो नरक का मूल है और उसी के लिए पिता का आग्रह है! हे भगवान! कैसा होगा? एक दिन करुण-स्वर से नागमहाशय अपने पिता से बोले, "बाबा, देखिए, इस विवाह से ही जीव के सारे दुःख-कष्ट उत्पन्न होते हैं। आप कृपा करके इस पाश में मुझे फँसाने का विचार त्याग दीजिए, मुझे इसमें न फँसाइए। आपके जीते-जी में तन-मन-वचन से आपकी सेवा करूँगा। घर में बहू आने से वह जितनी सेवा आपकी न करेगी, उससे कहीं सौगुना अधिक मैं करूँगा। मुझ पर दया कीजिए।"

पुत्र के विषण्ण मुख और करुण वाक्य से दीनदयाल को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सोचा, "विवाह से जिसे सुख पहुँचाना चाहता हूँ, वही यदि इतना दुःखी हो जाय, तो यह सब खटपट क्यों करूँ? यह संकल्प त्याग देना चाहिए।" पर पुनः उनके मन में आया, "दुर्गाचरण यदि विवाह नहीं करेगा, तो हम निर्वंश हो जायँगे, फिर हमारे पुरखों को पिंड-दान कौन करेगा?" इस विचार ने दीनदयाल के मन को अस्थिर कर दिया, परन्तु उपाय क्या था? तर्क, युक्ति, तिरस्कार आदि कुछ भी नागमहाशय को विवाह के लिए राजी न कर सका। अतः दुःख से विह्वल हो दीनदयाल एकान्त में रोने लगे। नागमहाशय उस समय घर पर नहीं थे। घर लौटने पर वे देखते हैं कि पिताजी रो रहे हैं। उन्हें बड़ा बुरा लगा, वे सोचने लगे, "पिता के सिवाय मेरा अपना कहने को इस संसार में और कौन है? हाय! हाय! मेरे लिए ही इन्हें इतना दुःख? आग लगे इस धर्म-कर्म में? आज से मैं पिता की

आज्ञा का पालन करूँगा। मेरे विवाह कर लेने से यदि पिताजी सुखी होते हैं, तो मैं वैसा ही करूँगा।" ऐसा सोचकर नागमहाशय पिता के पास जाकर वोले, "वावा, मैं विवाह करूँगा।"

पहले तो यह वात दीनदयाल ठीक समझ न सके, वे केवल अश्रुपूर्ण नेत्रों से नागमहाशय के मुख की ओर ताकते रहे। नागमहाशय पुनः वोले, "वावा, विवाह की तिथि निश्चित करके घर में पत्र भेज दीजिए।"

ये अनपेक्षित शव्द सुनकर दीनदयाल का हृदय भर आया; वे गद्गद-कण्ठ से वोले, "तूने मेरा कहना मानकर मेरे धर्म की रक्षा की! विवाह होने के वाद तू अपने मन के अनुसार चलना, मैं तुझे कुछ भी नहीं कहूँगा। मैं अन्तःकरण से आशीर्वाद देता हूँ कि ईश्वर तेरा मनोरथ पूर्ण करें।" इतना कहकर दीनदयाल पालवावुओं के घर यह शुभ समाचार सुनाने चले गए। पालवावू लोग विवाह की वात सुनकर प्रसन्न हुए और वहुतसा खर्च स्वयं वहन करने की उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की।

इस तरह सभी को आनन्द हुआ, पर जिसका विवाह होना है, उसके हृदय में दुःख की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। पिता को विवाह की सम्मति देकर नागमहाशय तुरन्त घर से वाहर चले गए। सारा दिवस उन्होंने सड़कों में घूम-फिरकर विताया और रात्रि के समय गंगा-किनारे वैठकर वे व्याकुल अन्तःकरण से रोने लगे। इस दुःख को समझनेवाला कोई नहीं, मन की वेदना किससे कहें? दिन-भर उन्होंने कुछ खाया नहीं। दीनदयाल को यह कुछ भी मालूम नहीं हुआ। वे तो तिथि

निश्चित करने, घर को पत्र भेजने और आवश्यक वस्तुएँ खरीदने में ही लगे रहे।

धीरे-धीरे सारी आवश्यक चीजें खरीद ली गईं, केवल वर की पोशाक बाकी रही। दीनदयाल ने नागमहाशय से अपनी रुचि के अनुसार पोशाक खरीद लाने के लिए कहा, पर वे किसी प्रकार राजी नहीं हुए। अन्त में दीनदयाल स्वयं बाजार से वह सब खरीद लाए।

आज देश जाने का दिन है। दीनदयाल सामान बाँध-बूँध रहे हैं। नागमहाशय नित्य के समान आज भी सायंकाल के समय गंगा-किनारे घूमने गए। घर लौटने के पूर्व उन्होंने गंगामैया से हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "माता! मैंने सुना है कि तू पतितपावनी है! गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने पर यदि मेरे शरीर में अपवित्रता की कीचड लग जाय, तो मैया, उसे तू धो देना। सुख-दुःख में, माता, इस दास को अपने श्रीचरणों में आश्रय और शरण देना।" इस प्रकार प्रार्थना करके वे घर लौटे और तत्पश्चात् पिता-पुत्र देश के लिए रवाना हो गए।

तृतीय अध्याय

द्वितीय विवाह और डाक्टरी

विवाह के विषय में नागमहाशय कहा करते, "केवल वंश-वृद्धि के लिए विवाह करने में दोष नहीं होता, पर केवल इसी एक उद्देश्य से विवाह करने में पूर्वकाल के ऋषि-मुनि ही समर्थ थे। वे आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करते और यदि विवाह करते, तो वंश-वृद्धि के लिए ही। व्यास, शुकदेव, सनक, सनत्कुमार सरीखे पुत्रों को जन्म देकर अन्त में वे संसार त्यागकर वानप्रस्थ-आश्रम में चले जाते। पर इस कलियुग में वैसा होना दुष्कर है, क्योंकि अब उस समय के समान तपस्या नहीं रही; इसी लिए केवल विकार के फलस्वरूप जन्मे हुए पुत्र स्वाभाविक ही दुष्ट और दुर्बल रहते हैं।" फिर अपने द्वितीय विवाह के सम्बन्ध में वे कहते, "क्या करता! पिता की आज्ञा थी! विषवत् लगने पर भी मुझे आज्ञा-पालन करना पड़ा।"

विवाह के चार-पाँच दिन पहले दीनदयाल और नागमहाशय अपने गाँव में पहुँच गए। देखते-देखते विवाह का दिन आ गया। वधू का घर समीप ही था—उसी ग्राम में। दीनदयाल परम आनन्द सहित बाजे-गाजे के साथ वर को लेकर चले। विवाह-विधि निर्विघ्न समाप्त हो गई। नागमहाशय की, अब और विवाह न करके ईश्वर-प्राप्ति के प्रयत्न में ही आयुष्य बिता देने की, इतने दिनों की इच्छा पर पानी फिर गया। उन्होंने सोचा, विधाता की विडम्बना से जब संसार में फँसना पड़ा, तब द्रव्योपार्जन करना आवश्यक है। नौकरी से उन्हें जन्म से ही घृणा थी। अतः उन्होंने डाक्टरी के स्वतन्त्र व्यवसाय द्वारा

जीवन-निर्वाह करने का निश्चय किया। विवाह के पश्चात् पिता-पुत्र कलकत्ता आ गए। इसी समय से नागमहाशय ने डाक्टर की फीस लेना आरम्भ किया। अध्ययन, रोगियों की सेवा, परिचितों से प्रेममय भाषण और भगवत्प्रसंग में नागमहाशय का जीवन धीर गति से वहता जा रहा था कि अचानक एक दिन उनके इस सुख-चन्द्र पर दुःख-राहु सवार हो गया। गाँव से पत्र आया कि भगवती अस्वस्थ हो गई हैं। एक तो उनकी वृद्धावस्था और उस पर पेचिश की बीमारी। नागमहाशय चिन्तातुर हो गाँव दौड़े गए। उनके घर पहुँचते ही भगवती बड़ी प्रसन्न होकर बोलीं, "तेरा मुँह देखते-देखते मैं जा रही हूँ, यही मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है।" नागमहाशय ने बहुत प्रयत्न किया, पर वे किसी प्रकार अपनी उन मातृतुल्य बुआ को बचा न सके। मृत्यु के पहले भगवती ने नागमहाशय को अपने पास बुलाकर पूछा, "सब कोई भोजन कर चुके हैं ?" अन्तिम समय के पन्द्रह मिनट पहले तक वे बरामदे की सीढ़ी पर राम-नाम जपते बैठी रहीं, बोलीं, "अब देर नहीं है।" फिर नागमहाशय के सिर पर हाथ फेरते हुए बोलीं, "तेरी राम में मति हो।" नागमहाशय के प्रति उनकी स्नेहमयी बुआ का यही अन्तिम वाक्य था। भगवती ने राम-मन्त्र की दीक्षा ली थी। "रा" कहते-कहते उनकी प्राणवायु निकल गई। यह नागमहाशय ने स्वयं सुना। यह घटना नागमहाशय के द्वितीय विवाह के सात वर्ष बाद हुई थी।

अब तक नागमहाशय को 'शोक' किसे कहते हैं, इसकी कल्पना नहीं थी। जब पहली पत्नी मरी, तब उनका उसके प्रति प्रेम उत्पन्न ही न हो पाया था, अतः उसकी मृत्यु पर उन्हें शोक का अनुभव नहीं हुआ था। बाल्यकाल में माता मरी,

पर उसके स्थान में भगवती का प्रेम प्राप्त हो जाने के कारण मातृ-शोक से उन्हें पीड़ा नहीं हुई थी। पर आज उन्हीं मातृतुल्य भगवती की मृत्यु से उनके हृदय को भयंकर आघात पहुँचा। घर में रहना उनके लिए असह्य हो उठा। बारम्बार वे भगवती की चिता-भूमि पर जाते और वहाँ रात-रात भर पड़े रहते, अथवा जंगल में जाकर रात विताते। उनकी छोटी बहिन शारदा बतलाती, "बुआ की मृत्यु से भैया उन्मत्त के समान हो गए थे। उनको स्नान और भोजन के लिए भी वार-वार कहना पड़ता था। कभी-कभी पश्चिम ओर के जंगल में वे मृतक के समान निश्चेष्ट पड़े रहते थे। अतः कलकत्ता पत्र भेजकर पिताजी को बुलवाना पड़ा था।"

भगवती का श्राद्ध आदि निपटाकर नागमहाशय पिता के साथ कलकत्ता आ गए। शोक का वेग क्रमशः कम तो हुआ, पर उसके स्थान पर एक दूसरी चिन्ता ने अधिकार जमा लिया। नागमहाशय दिन-रात विचार करने लगे, "मनुष्य क्यों जन्म लेता है? वह मरता क्यों है? मृत्यु के बाद उसकी क्या गति होती है? बुआ की क्या गति हुई? वे किस लोक में गईं? जो बुआ मेरे शरीर पर जरासी चोट लगने से भी वड़ी दुःखित हो जाती थीं, उनके लिए मैं कितना शोक करता हूँ, कितना विचार करता हूँ, पर कहाँ, वे तो एक वार मुड़कर भी नहीं देखतीं! मरने से ही यदि सारे सम्बन्ध की इतिश्री हो जाती हो, तव आग लगे इस क्षुद्र 'मेरे-अपने में'! फिर क्यों इतना 'मैं-मेरा' करना! इस जन्म-मृत्यु-पूर्ण संसार में मैं क्यों आया हूँ? मनुष्य-जीवन का क्या कर्तव्य है?" इन्हीं विचारों में नागमहाशय रात-दिन विभोर रहने लगे।

यद्यपि नागमहाशय फीस लेकर डाक्टरी करने लगे, फिर भी किसी से फीस माँगने में उन्हें बड़ा संकोच होता था। वे अपने मुँह से फीस की रकम के सम्वन्ध में कुछ न कहते। लोग अपनी इच्छा से जितना दे देते, उतने ही में वे सन्तोप कर लेते थे। इसी कारण उनका व्यवसाय दिन-पर-दिन वढ़ चला।

व्यवसाय में नागमहाशय का किसी प्रकार वाहरी आडम्वर नहीं था। गाड़ी-घोड़ा तो एक ओर रहे, उन्होंने अलग औषधालय भी कभी नहीं खोला। दूर-दूर से उन्हें वुलौवा आता, और वे पैदल ही जाते। यदि कोई गाड़ी में ले जाने की इच्छा प्रकट करता, तो भी वे उसका कहना न मानकर पैदल ही चले जाते। उनकी पोशाक विलकुल साधारण थी। डाक्टरी पोशाक रहने से रोजगार में और भी वृद्धि होगी ऐसा सोचकर दीनदयाल उनके लिए एक अच्छीसी पोशाक खरीद लाए। पर नागमहाशय वोले, "इस पैसे से गरीव और दुःखी लोगों की सेवा हुई होती, तो वड़ा अच्छा हुआ होता। मुझे ऐसी पोशाक नहीं चाहिए।" इस पर दीनदयाल लम्वी साँस छोड़ते हुए वोले, "तुझसे मुझे वड़ी आशा थी। अव समझ रहा हूँ, मुझे वड़ा धोखा हुआ। तू तो फकीर वनने चला है।" केवल यही नहीं, इस संसार-अनभिज्ञ पुत्र के सारे कार्य अद्भुत थे! मुहल्ले में कौन कहाँ वीमार है, कौन भूखा है, इस वात का पता लगाकर उसका उपचार किए विना नागमहाशय अपने मुँह में पानी तक न डालते थे। असमर्थ व्यक्ति से देखने की फीस तो लेते ही न थे, दवाई का दाम भी नहीं लेते थे, इतना ही नहीं, वरन् अपने जेव से पथ्य का खर्च तक दे दिया करते थे। रास्ते में यदि कोई निराश्रित रोगी दिख जाता, तो वे उसे अपने घर पर

लाकर उसकी सब व्यवस्था कर देते। भिखारी को अपना परोसा हुआ अन्न दे देते। इस प्रकार उनके सारे व्यवहार विलक्षण थे।

एक दिन नागमहाशय किसी गरीब रोगी के घर गए। देखा, उसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। अतः वे तीन-चार घण्टे वहीं रहकर उसकी शुश्रूषा करते रहे और रात को पुनः उसे देखने के लिए गए। जाड़े के दिन थे, रोगी के घर का छप्पर सैकड़ों छेदों से भरा हुआ था, उस पर सर्दी से बचाव करने लायक रोगी के तन पर कोई वस्त्र नहीं। नागमहाशय सोचने लगे—'एक तो इसका रोग बड़ा कठिन है, उस पर रात की ऐसी सर्दी, ऐसी दशा में तो इसका बचना असम्भव है।' उनके शरीर पर एक कीमती भागलपुरी शाल थी। वह उतारकर उन्होंने रोगी के शरीर पर डाल दी और वहाँ से चले गए। रोगी ने उन्हें बहुत पुकारा, पर वे नहीं लौटे। दरवाजे के बाहर से वे उच्च स्वर से कह गए, "डरो मत, मैं कल फिर से देख जाऊँगा।" दूसरे दिन उस रोगी के घर पहुँचते ही वह उनका बड़ा उपकार मानने लगा। नागमहाशय बोले, "मेरी अपेक्षा तुमको गरम कपड़े की अधिक आवश्यकता थी, इसी लिए मैं शाल दे गया।" पुत्र के शरीर पर शाल न देख दीनदयाल ने उसके सम्बन्ध में पूछा। जब उन्हें सारी बात मालूम हुई, तो वे नागमहाशय को बहुत बुरा-भला कहने लगे। फलस्वरूप उस दिन पिता-पुत्र दोनों ने ही उपवास किया। दूसरे दिन दीनदयाल पुनः गरम कपड़े खरीद लाए। वह रोगी स्वस्थ हो जाने पर प्रतिदिन नागमहाशय को प्रणाम कर जाता और कोई रोगी दिखने पर उसे उनके पास ले आता।

और एक दिन की बात है। वे एक गरीब रोगी की चिकित्सा करने उसके घर गए। देखा, वह भूमि पर ही पड़ा हुआ है। यह देखते ही वे घर जाकर अपने यहाँ की एक खाट ले आए और उस पर उस रोगी को सुलाकर उसकी जाँच करने लगे। दीनदयाल को ये सब बातें बिलकुल नापसन्द थीं।

एक बार एक छोटे बच्चे को हैजे की बीमारी हो गई। नागमहाशय सारा दिन उसके पास बैठकर उसकी चिकित्सा करते रहे, पर वह बालक बचा नहीं। सुरेश कहते हैं, "मैंने सोचा था, उस दिन वे काफी रकम पायँगे। पर सन्ध्या समय देखा, खाली हाथ रोते-रोते घर लौटे और दुःख करने लगे, 'हाय! हाय! उस गृहस्थ का एकलौता ही लड़का था, पर वह भी नहीं बच सका! बेचारे का घर सूना-सूना हो गया!' रात में उन्होंने अपने मुँह में पानी तक न डाला।"

नागमहाशय की 'प्रैक्टिस' दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ने लगी। पालबाबुओं ने उन्हें अपना गृह-वैद्य नियुक्त कर लिया। इसी लिए वे भी 'डाक्टर' कहकर नागमहाशय का उल्लेख करते हैं। बाबू हरलाल पाल कहते हैं, "जब तक नागमहाशय हमारे गृह-वैद्य रहे, तब तक हमारे यहाँ एक भी अपमृत्यु नहीं हुई। एक समय हमारे नाते की एक स्त्री को हैजा हो गया। नागमहाशय चिकित्सा करने लगे, पर रोग कम होने के बदले बढ़ता ही गया। तब उन्होंने डा० भादुड़ी को बुला लाने के लिए कहा। डा० भादुड़ी आए। क्या-क्या दवाइयाँ दी गई हैं, यह सुनकर उन्होंने कहा, 'उपचार बिलकुल ठीक चला है, मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कर सकता।' हम लोगों ने बहुत आग्रह किया, पर डा० भादुड़ी राजी नहीं हुए, उलटे यह

चेतावनी देते गए कि रोगिणी को दूसरे डाक्टर के हाथों न सौंपा जाय। नागमहाशय की सुचिकित्सा से रोगिणी धीरे-धीरे स्वस्थ हो गई। इससे नागमहाशय पर हम लोगों की श्रद्धा और भी बढ़ गई। इसके वाद हम लोगों ने किसी भी प्रसंग में किसी अन्य डाक्टर को नहीं वुलाया, कठिन रोग में भी हम लोग नागमहाशय पर ही पूर्ण विश्वास रखते थे। उस स्त्री के पूर्ण निरोग हो जाने पर हम लोगों ने एक दिन एक चाँदी के गिलास में रुपए भर उनको पुरस्कारस्वरूप दिया। हम लोगों के आश्रित होने के नाते वे हमसे कभी भी फीस नहीं लेते थे। कहते थे, 'जो देना हो, पिताजी को दे दीजिए।' उन्होंने वह चाँदी का पात्र या रुपया कुछ भी ग्रहण नहीं किया। हम लोगों ने सोचा, शायद रकम कम होने के कारण वे नहीं ले रहे हैं, अतः उसमें और पचास रुपए मिलाकर हम लोग उनसे स्वीकार कर लेने के लिए आग्रह करने लगे। तव वे वोले, "औषधि का मूल्य और देखने की फीस मिलाकर २०) से अधिक नहीं होता।' हम लोगों के अधिक आग्रह करने पर वे अन्त में केवल २०) लेकर चले गए। लाचार हो हम लोगों ने वाकी रुपए शारदीय पूजा के निमित्त दीनदयाल के नाम पर जमा कर लिए।"

यह वात जव पालवावुओं से दीनदयाल को मालूम पड़ी, तव उनके धैर्य का वाँध टूट गया। उदर-पोषण के लिए कहाँ उन्हें वुढ़ापे में भी नौकरी करनी पड़ रही है और कहाँ यह निर्वोध लड़का सचाई से प्राप्त धन की भी उपेक्षा करता है, इस वात का उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। परन्तु कोई उपाय नहीं था। उन्होंने नागमहाशय की वहुत भर्त्सना की। नागमहाशय वोले, "आप ही तो मुझे धर्म-मार्ग के अनुसरण करने का उपदेश देते

हैं, तब भला जान-बूझकर अधिक रकम मैं कैसे लूँ ? दवा का मूल्य अधिक-से-अधिक ६) और देखने की फीस १४)—इस तरह कुल २०) हुए, सो मैंने ले लिए। इससे अधिक रकम लेता, तो अधर्म होता। इसलिए आप वह शेष रकम मत लेंगे।" दीनदयाल बोले, "बाबू ने यदि खुश होकर तुझे अधिक रुपए इनाम के रूप में दिए, तब तू नहीं लेगा क्या ? इस तरह तेरा रोजगार कभी नहीं चल सकता।" नागमहाशय बोले, "भले ही रोजगार न चले, पर जिसे मैं अनुचित कार्य समझता हूँ, उसे मैं प्राण रहते कभी न करूँगा। ईश्वर सत्यस्वरूप हैं, असत्य मार्ग में चलने से मनुष्य का इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ता है।" यह उत्तर सुनकर दीनदयाल समझ गए कि मेरा पुत्र सांसारिक उन्नति कभी नहीं कर सकता।

इधर नागमहाशय सोचने लगे, "हाय ! हाय ! इसी को संसार कहते हैं ! इस भवारण्य में मनुष्य अनीति से धन कमाए, तो कृतकृत्य समझा जाता है, और इस प्रकार यदि वह धन कमा सका, तो उसे नाम, कीर्ति, मान, सम्मान सभी प्राप्त होता है ! आग लगे ऐसे संसार में, मुझे ऐसे संसार की आवश्यकता नहीं। सच्चे मार्ग से चलकर भिक्षा-वृत्ति से जीवन-निर्वाह करना स्वीकार करूँगा, पर इस अनित्य देह को पुष्ट करने के लिए अधर्म के द्वारा धनोपार्जन के निन्दनीय मार्ग का अवलम्बन मैं कदापि न करूँगा।"

धीरे-धीरे नागमहाशय की डाक्टरी खूब चल उठी। यदि उनमें विषय-बुद्धि रहती, तो वे हजारों रुपए कमा लेते। जहाँ उन्हें प्रति मास ३००-४०० रुपए की आय होना सम्भव और उचित था, वहाँ उन्हें केवल ३०-४० रुपए ही मिलते थे। उन्होंने देखने

की फीस कभी किसी से नहीं माँगी । जो जितना दे देता, उतना ही वे प्रसन्न अन्तःकरण से ले लेते । कई लोग उन्हें मनमाना ठगते भी थे—चिकित्सा करवा ली, पर पैसा नहीं दिया; उधार ले गए और वापस नहीं किया । सुरेश कहते हैं, "मामा जब रोगियों को देखकर घर लौटते, तो उस समय वहाँ चार-पाँच उधार माँगनेवाले बैठे ही रहते । यदि कोई कुछ माँगता, तो वे 'नाहीं' नहीं कर सकते थे । इसी लिए यदि कभी कुछ प्राप्त होता भी, तो वह सब उधार आदि देने में ही खतम हो जाता । कभी-कभी तो उनको स्वयं को अन्न के लाले पड़ जाते । ऐसे समय वे एक-दो पैसे का चना-चबेना फाँककर दिन काट देते—और हो सकता है, उस दिन उन्हें ७-८ रुपए मिले हों ! उनसे रुपया उधार ले जानेवाले लोग कभी पैसा वापस नहीं करते थे । उलटा कोई-कोई यह कहते, "तुम्हें क्या कमी है, भगवान तुम्हें और भी देंगे ।" अपने लिए नागमहाशय ने कभी एक पैसा भी संचय नहीं किया । जो कुछ उनके हाथ में बच जाता, उसे वे दीनदयाल के पास दे देते । उन्हें यदि कपड़े आदि की आवश्यकता होती, तो अपने पिता से कहते । संचय के विषय में नागमहाशय का कहना था, "जब जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, भगवान उसे अवश्य पूर्ण कर देते हैं । मनुष्य के चिन्ता करने से क्या होगा ? भगवान पर निर्भर रहने से इधर और उधर दोनों तरफ ठीक रहता है । हम अहं-बुद्धि से जो कुछ करने जाते हैं, वही अन्त में हमारे लिए विपरीत फल देनेवाला होता है । यह मैंने अपनी आँखों से देखा है ।"

नागमहाशय को अधर्म, ढोंग या कपटाचरण बिलकुल पसन्द न था । एक दिन की बात है, एक वैष्णव, साधु के वेश में,

एक नवयुवती वैष्णवी के साथ उनके घर भिक्षा के लिए आया। उस समय नागमहाशय भगवच्चिन्तन में निमग्न थे। दरवाजे पर 'राधे-राधे' की आवाज सुन वे बाहर आए। वैष्णव-वैष्णवी को देखते ही उनके सिर से पैर तक आग लग गई। कहा, "इस प्रकार स्वाँगपूर्वक 'राधे-राधे' कहने से भिक्षा न पाओगे। यदि एक बार हृदय से कह सको, तभी भिक्षा मिल सकेगी।" वैष्णव-दम्पति एक शब्द न कह चलते बने। नागमहाशय सोचने लगे, "हाय-हाय, यह घोर कलियुग तो पृथ्वी का ग्रास कर ले रहा है। आज मैंने आँखों के सामने साक्षात् कलिकाल देखा!"

वैष्णव-वैष्णवी के समान, एक दिन एक भैरव एक भैरवी के साथ उनके घर भिक्षा के लिए आया। त्रिशूलधारी भैरव नागमहाशय को देखते ही गाँजा के लिए पैसा माँगने लगा। नागमहाशय उस बात का कोई उत्तर न दे बोले, "देखिए, आप जो इच्छा हो कर सकते हैं, पर मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ— यह जो आप एक कुलवती युवती को भैरवी सजाकर उसको साथ ले राजमार्ग पर घूमते फिरते हैं, सो किस शास्त्र के अनुसार करते हैं? क्या आप मुझे इसका उत्तर दे सकते हैं?" इस प्रश्न से वह उग्र भैरव और भी क्रोधित हो गया और बोला, "यदि न देना हो, तो मत दो, पर इस प्रकार गाली देने का तुम्हें क्या अधिकार?" भैरव-भैरवी क्रुद्ध हो चले गए। नागमहाशय सोचने लगे, "अच्छा गुरु प्राप्त न होने से लोगों की ऐसी ही दुर्दशा होती है। ढोंगी गुरु आप भी डूबता है और दूसरों को भी डुबाता है!" वे कहा करते, "अज्ञानवश यदि कोई कुछ अन्याय करे, तो वह क्षम्य है, पर यदि धर्म के नाम पर कोई ढोंग,कपटाचरण और व्यभिचार करे, तो कल्पान्त में भी उसके उद्धार की आशा नहीं।"

एक समय एक अपरिचित व्यक्ति के यहाँ से उनको वुलौवा आया। नागमहाशय वहाँ गए। वह व्यक्ति उनके सामने एक अत्यन्त सुन्दरी विधवा युवती को ले आया और उसका गर्भ नष्ट कर देने के लिए अनुरोध करने लगा। यह देखकर नागमहाशय तो कुछ क्षण तक के लिए स्तम्भित हो गए। फिर वोले, "एक तो किसी भले आदमी के कुल में धव्वा लगाकर इसे भगा लाए हैं, यही एक महापाप है, उसके ऊपर फिर भ्रूण-हत्या करवाकर अपने सिर पर दूसरा महापाप थोपना चाहते हैं! शिव, शिव!" उस व्यक्ति ने उनसे वहुत अनुरोध किया, पर नागमहाशय न माने। वह उन्हें धन का प्रलोभन देते हुए हठ करने लगा। इस पर नागमहाशय एकदम वहाँ से चले आए। हाय! इस महापाप के प्रतिकार का क्या कोई उपाय नहीं? उन्होंने व्राह्मसमाज के उपाचार्य शिवनाथ के भाषण सुने थे। सोचा, शिवनाथ धार्मिक हैं और समाज के एक गण्यमान व्यक्ति हैं। उनसे कहने पर शायद इस पाप-कार्य का कोई प्रतिकार हो सकता है, यह सोच वे शिवनाथवावू के पास गए। सारी वात सुनकर शिवनाथ ने उन्हें एक-दो व्राह्मसमाजियों के नाम वतला दिए और उन लोगों से परामर्श करके कानून के अनुसार कार्य करने की सलाह दी। नागमहाशय ने वैसा ही किया, पर उसका कोई फल न हुआ। तव नागमहाशय ने सोचा, "मैं ही एक वार फिर से प्रयत्न करके देखूँ न।" यह सोच दूसरे दिन वे उस भ्रूण-हत्या करानेवाले व्यक्ति के यहाँ गए। जाकर देखते हैं कि वे लोग काशी भाग गए हैं। मैं इस पाप-कर्म का कोई प्रतिकार न कर सका, यह सोच नागमहाशय कई दिन तक वड़े सन्तप्त रहे और वीच-वीच में अपने को धिक्कारा करते।

आर्थिक स्थिति में उन्नति होने पर भी दीनदयाल ने रसोइया नहीं रखा। वे स्वयं ही भोजन वनाते थे। पुत्र की इच्छा थी कि पिता को इस कार्य से निवृत्त कर स्वयं रसोई वनाए। इसी लिए अवसर पाते ही वे रसोई तैयार करने में लग जाते। उससे दीनदयाल को बड़ा ही क्रोध आता। पुत्र को रसोई करने का मौका न मिले इसके लिए दीनदयाल अधिक सावधान रहने लगे। इधर पुत्र भी अवसर की ताक में रहने लगा। इस भोजन वनाने के विषय को लेकर पिता-पुत्र में प्रायः ही विवाद हो जाता। यदि घर में उस दिन कोई व्यक्ति उपस्थित रहता, तो वह मध्यस्थ हो उस दिन का विवाद मिटा देता। पर उससे क्या, दूसरे दिन फिर से वही वात! पिता-पुत्र दोनों सवेरा होते ही मन-मन सोचा करते—'आज मैं भोजन वनाऊँगा।' जिसे अवसर मिलता, वह तुरन्त रसोई-कार्य में लग जाता और दूसरा अपना मनोरथ विफल होते देख क्रोध से कुड़वुड़ाता रहता। प्रतिदिन इस प्रकार के विवाद से छुटकारा पाने के लिए नागमहाशय ने निश्चय किया कि वे अपनी पत्नी को यहीं कलकत्ते में वुला लेंगे। सुरेशवावू के घर के समीप एक दुमंजला मकान भाड़े पर लिया गया, क्योंकि पहलावाला घर विलकुल छोटा था। सन् १८८० ई० में नागमहाशय की पत्नी अपने स्वामी और श्वशुर की सेवा करने के लिए कलकत्ता आईं। संसार में पैर रखने का यही उनका पहला अवसर था। यह वात नहीं कि वहाँ देवभोग में रहते समय उनका स्वामी से मिलन न हुआ हो। पर वह एक वात थी, और यह विलकुल भिन्न! तव वे वधू थीं और अव गृहिणी। नवीन गृहिणी अनुभवी के समान संसार का सारा काम-काज सुचारु रूप से

चलाने लगीं और स्वामी एवं श्वशुर की सेवा में रत रहने लगीं। इससे दीनदयाल तो सुखी हुए, पर पत्नी अपने स्वामी की प्राणपण से सेवा करके भी उनका चित्त अपनी ओर आकर्षित न कर सकीं। नागमहाशय का शास्त्रों के पाठ और भगवान के प्रति जितना अनुराग था, उसका एक-शतांश भी पत्नी के प्रति नहीं था। उन्हें अपने व्यवसाय से जो कुछ अवकाश मिलता, वह सारा समय वे भागवत, पुराण आदि के पाठ में बिताया करते। कभी-कभी दीनदयाल को पढ़कर सुनाते। इससे उनकी पत्नी शरत्कामिनी का मन दिन-पर-दिन अस्थिर होने लगा।

भागवत में वर्णित संसार-चक्र का वर्णन और जड़भरत का आख्यान नागमहाशय के हृदय पर प्रबल अधिकार जमाने लगा। जड़भरत की कथा पढ़ते-पढ़ते वे विभोर हो जाते और सोचते—जब इतने बड़े मुक्त-पुरुष को एक क्षुद्र हरिण-शावक के मोह में पड़ने के कारण जन्म-मरण के चक्र में फँसना पड़ा, तब भला साधारण जीव की बात ही क्या ! माया की अनिर्वचनीय, अचिन्त्य शक्ति के सम्बन्ध में सोचते-सोचते वे भयविह्वल-चित्त से "ओ माँ, ओ माँ" करने लगते। क्रमशः उनके मन की वेदना तीव्र हो चली। दिन-रात उन पर यही चिन्ता सवार रहने लगी—किस तरह माया के हाथ से छुटकारा होगा, किस प्रकार संसार के बन्धनों से मुक्ति होगी ? वे व्याकुल हो सोचने लगे—विवाह तो कर लिया है, धन भी उपार्जन करना पड़ रहा है, बन्धन-पर-बन्धन पड़ते जा रहे हैं, तब फिर मुक्ति का उपाय क्या है ? जब उन्होंने प्रैक्टिस आरम्भ की थी, तब सोचा था कि उससे दीन-दुःखियों का उपकार होगा। 'यह ठीक है कि अथक प्रयत्न से रोगियों की शुश्रूषा की है, अम्लान-मुख से

खुले हाथों दान किया है, कितने दिन अपने मुख का कौर भूखों को दे दिया है—पर सच पूछो, तो कितने लोगों का दुःख दूर हो पाया ! तब फिर इस दुःखपूर्ण संसार में मैं क्यों आया ! उसके ऊपर विडम्बना का ढेर ! क्यों मैंने विवाह किया ! आग लगे कांचन में ! आग लगे काम-विकार में ! छिः, छिः, क्या मैं यही सब लेकर जीवन बिताऊँगा ? नहीं, नहीं, भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन कर इस नर-जन्म को सार्थक करूँगा। पर किस प्रकार साधना करूँ, किस महापुरुष की शरण में जाने पर भगवान का साक्षात्कार होगा ?'—इन्हीं विचारों में नागमहाशय का मन दिन-रात गोते लगाने लगा।

इन दिनों सुरेशबाबू और कुछ ब्राह्मसमाजी एक साथ मिलकर गंगातीर पर ईश्वरोपासना करते थे। नागमहाशय वहीं एक किनारे बैठकर ध्यान किया करते। उपासना के बाद किसी दिन ब्रह्म-संगीत, तो किसी दिन कीर्तन होता। कीर्तन के समय नागमहाशय तन्मय होकर नृत्य करते। भावावेश में उन्मत्त होकर नृत्य करते-करते वे कभी-कभी गिर पड़ते और उनको चोट लग जाती। एक दिन तो वे गंगा में गिर पड़े। सुरेश ने एक दूसरे व्यक्ति की सहायता से उन्हें बाहर निकाला। पर सभी दिन उनका इस प्रकार उन्मत्त भाव प्रकट नहीं होता था। भाव संवरण करने में नागमहाशय बड़े कुशल थे। वे कहा करते, "जितना रहेगा गुप्त, उतना होगा पुष्ट। जितना होगा व्यक्त, उतना जानो त्यक्त।" सुरेश कहते हैं, "भावोन्मत्तता के समय नागमहाशय के शरीर पर प्रबल ईश्वरानुराग के सारे लक्षण स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाते थे। उस समय तो 'देखने से ही दीक्षा और सुनने से ही शिक्षा' होती थी।"

एक समय नागमहाशय ने किसी साधु के मुख से सुना, "ईश्वर पर चाहे जितना विश्वास और प्रेम रहे, पर विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण करके साधना किए विना ईश्वर-लाभ नहीं होता।" तव से नागमहाशय दीक्षा लेने के लिए व्याकुल हो उठे। उनके हृदय में हाहाकार मच गया। सदा-सर्वक्षण यही चिन्ता उन पर सवार रहने लगी—कहाँ गुरु मिलेंगे, कौन मुझे मन्त्र देगा। समय-समय पर गंगातीर पर अनेक साधु-सन्तों का समागम होता रहता है, उनमें से यदि कोई दया करके मुझे दीक्षा दे दें—इस आशा से वे काफी रात तक गंगा के किनारे वैठे रहते। इस प्रकार कुछ दिन वीतने के उपरान्त एक दिन कुमारटोली के घाट पर स्नान करते समय नागमहाशय ने देखा, एक नाव एक ही सवार को लेकर घाट की ओर आ रही है। उनका ध्यान उस नाव की ओर गया। नाव के घाट से लगने पर उन्होंने देखा कि सवार और कोई नहीं, वरन् अपने ही कुलगुरु, कामारखारा-निवासी श्रीवंगचन्द्र भट्टाचार्य हैं। नागमहाशय ने शीघ्र स्नान समाप्त कर, गुरुदेव की पद-धूलि ली और उनसे इस प्रकार एकाएक नाव के द्वारा कलकत्ता आने का कारण पूछा। वंगचन्द्र वोले, "वेटा, महामाया के आदेश से तुझे मन्त्र-दीक्षा देने के लिए यहाँ आया हूँ।" नागमहाशय को प्रतीत हुआ कि करुणामयी जगज्जननी ने मेरी करुण प्रार्थना सुन ली है। उस समय उनका निवासस्थान काशी मित्र की गली में था। वे परम आनन्द सहित वंगचन्द्र भट्टाचार्य को वहाँ ले गए। कुलगुरु को देखकर दीनदयाल के भी आनन्द की सीमा न रही, क्योंकि यह उनकी प्रवल इच्छा थी कि उनका पुत्र कुलगुरु से ही दीक्षा ले। दूसरे दिन शुभ मुहूर्त में नागमहाशय ने

पत्नी सहित शक्तिमन्त्र की दीक्षा ली। नागमहाशय को दीक्षा देने के तीन-चार दिन पश्चात् वंगचन्द्र विक्रमपुर को रवाना हो गए। कुछ दिन और ठहर जाने के लिए दीनदयाल और नागमहाशय ने उनसे वहुत विनती की, पर वंगचन्द्र नहीं रुके। नागमहाशय की दीक्षा के एक वर्ष पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई।

दीक्षा ग्रहण करके नागमहाशय कठोर साधना में लग गए। जप-ध्यान करते-करते रात बीत जाती थी। अमावस्या को उपवास करते हुए वे गंगातीर पर बैठकर जप करते। जप करते-करते कभी-कभी उनका वाह्यज्ञान लुप्त हो जाता। एक दिन वे तन्मय होकर जप कर रहे थे कि इतने में गंगा में ज्वार आ गया। वह उनकी वेसुध देह को वहा ले गया। देह-ज्ञान होने पर वे तैरते हुए वाहर निकल आए। चन्द्र की कलाओं के तारतम्य के साथ अपने आहार का भी तारतम्य रखते हुए उन्होंने कुछ समय तक नक्तव्रत का पालन किया था। सुरेश कहते हैं, नागमहाशय तन्त्र-मत के अनुसार भी साधना करते थे। उन्होंने कभी फूल, वेलपत्र आदि लेकर वाह्य-पूजा नहीं की। दीक्षा ग्रहण करने के वाद वे सदैव जप-तप-ध्यान आदि करते, पर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भक्तिमार्ग (प्रेमाभक्ति) की ओर थी। इन्हीं दिनों उन्होंने श्यामा (जगदम्बा) विषयक कई गीत वनाए। जप-ध्यान के वाद वे कभी-कभी इन्हीं गीतों में से एक-दो की आवृत्ति करते।

धीरे-धीरे उनकी प्रैक्टिस में वाधा पड़ने लगी। लोग उन्हें वुलाने आते, पर जव देखते कि वे वहाँ नहीं हैं, तो दूसरे डाक्टर के पास चले जाते। इससे उनकी आमदनी और भी कम हो चली।

दीनदयाल ने देखा कि फिर से सर्वनाश आ गया।

सुरेशबाबू के साथ पुत्र की मैत्री देखकर वे एक प्रकार से निश्चिन्त थे। भगवती की मृत्यु से नागमहाशय के मन में पहली बार जो वैराग्य की भावना जगी थी, वह, दीनदयाल के मत से, सुरेश के उपदेश से ही दूर हुई थी। सुरेश धार्मिक और सदाचारी गृहस्थ थे। उनकी संगति में रहते हुए, पुत्र की वैराग्याग्नि पुनः प्रज्वलित हो उठेगी, यह बात दीनदयाल के मन में आई ही न थी। वे लोगों से सगर्व कहते, 'सुरेश के साथ मैत्री मेरे पुत्र के लिए बड़ी कल्याणकर हुई है।' पर अब उन्होंने देखा कि सुरेश का कोई भरोसा नहीं! अतः पुत्र का मन जिससे संसार-धर्म में लगे, इस हेतु वे बहू को नानाविध उपदेश देने लगे। पर बेचारी बहू भला क्या करे! वह तो पति के मन की प्रवृत्ति पहले ही समझ गई थी। यह सच था कि घर में अन्न-वस्त्र का कष्ट नहीं था। उनका संसार छोटासा था, पिता-पुत्र के उपार्जन से किसी तरह निर्वाह हो जाता था; पर केवल अन्न-वस्त्र से ही हृदय का अभाव पूर्ण नहीं हो जाता। पत्नी के लिए पति का प्रेम ही जीवन-सर्वस्व होता है।

वृद्ध पिता को कष्ट न हो इस उद्देश्य से नागमहाशय हाट-बाजार आदि सारे काम स्वयं करते थे। परन्तु उनके सभी व्यवहार यंत्रवत् हुआ करते—मानो एक प्राणहीन पुतली यंत्र की सहायता से हाथ-पैर हिला-डुला रही हो! सारे समय उनका मन ईश्वर-चिन्तन में लगा रहता। संसार के किसी भी कार्य में उनका मन नहीं था। भोजन करना पड़ता है, इसलिए कर लेते हैं; कपड़ा न पहनना ठीक नहीं, इसलिए पहन लेते हैं; डाक्टरी करते हैं, सो भी पिता के बारम्बार आग्रह से। वह माथा नीचा कर चुपचाप श्वशुर के उपदेश सुन लेती, पर इधर

मन-मन सोचती—इस गृहवासी संन्यासी को अपने मायिक पाश में वाँध सकनेवाली स्त्री अभी तक नहीं जन्मी। पत्नी के प्रति मायिक प्रेम न रहते हुए भी नागमहाशय सदैव उसके कल्याण की चिन्ता करते, उससे कहते, "देखो, कायिक (शारीरिक) या मायिक सम्वन्ध कभी चिरस्थायी नहीं होता। जो भगवान को पूरे हृदय से प्रेम कर सकता है, उसी का नर-जन्म सार्थक होता है। जो लोग इस मायिक सम्वन्ध में पड़कर सुध-वुध खो वैठते हैं, जन्म-जन्मान्तर में भी उनका मोह दूर नहीं होता। संसार-रूपी नरक में उन्हें वारम्वार आना पड़ता है। हाड़-मांस की इस सूखी ठठरी पर कभी मोहित न होना। मुझे भूलकर महा-माया की शरण लो, तुम्हारा इहकाल और परकाल दोनों सुधर जायँगे।" इस प्रकार तपस्वी की पत्नी भी तपस्विनी हो गई!

नागमहाशय की पत्नी के कलकत्ते में वास के समय सुरेशवावू प्रतिदिन उनके यहाँ आया करते थे। कभी-कभी नाग-महाशय के घर पर ही उनका भोजन हो जाता। सुरेश कहते हैं, "पत्नी के आने पर भी नागमहाशय के धर्मभाव में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ।" देवता चिरकाल देवता ही वना रहता है—सैकड़ों विपरीत परिस्थितियों में भी उसका देवत्व नष्ट नहीं होता। नागमहाशय भी ठीक ऐसे ही थे। पत्नी के प्रति उनकी किसी प्रकार आसक्ति नहीं थी।

नागमहाशय क्रमशः कठोर से कठोरतर साधना में डूवने लगे। इधर दीनदयाल का स्वास्थ्य भी दिनों-दिन गिरता जा रहा था। वे वृद्धावस्था में पालवावुओं के यहाँ ठीके का काम करते थे। उनकी अनुपस्थिति में नागमहाशय उनका काम चलाते। इस प्रकार कुछ दिन वीत गए, पर अव दीनदयाल

में काम करने की शक्ति नहीं रही। नागमहाशय की यह प्रवल इच्छा थी कि अव पिताजी कार्य से अवसर ग्रहण करें और जीवन के शेष दिन ग्राम में रहकर भगवच्चिन्तन में बिता दें। यह सच है कि वे दीनदयाल को, कार्य से अवसर ग्रहण करने के बाद, कलकत्ते में अपने ही पास रख सकते थे, सेवा-शुश्रूषा के लिए उनकी पत्नी थी ही। पर कलकत्ते में रहने से दीनदयाल के ईश्वर-चिन्तन में वहुत वाधाएँ आतीं। दीनदयाल के पास नाना प्रकार के स्वभाववाले लोग आते और विविध विषयों पर वात-चीत होती। दीनदयाल भी उन लोगों के साथ विविध प्रसंगों पर चर्चा करते। सवेरे उठकर दीनदयाल सबसे पहले 'दुर्गा' नाम लिखते, पर 'दुर्गा' नाम लिखते समय उपस्थित व्यक्तियों के साथ वातचीत भी करते जाते। पुत्र को यह विलकुल पसन्द न था। वे पिता से कहते, "अव भी आप विषय-चिन्तन छोड़ न सके, दुर्गा नाम लिखते समय भी विषय-चर्चा!" वीच-वीच में इसी प्रकार आए दिन पिता-पुत्र में कहा-सुनी हो जाती। अन्त में नागमहाशय ने पिता को ग्राम भेज देने का निश्चय किया। पिता के स्थान पर ठीके का काम अपने ऊपर लेकर वे दीनदयाल को ग्राम पहुँचा आए। श्वशुर की सेवा-शुश्रूषा के लिए वहू भी साथ गई।

पिता और पत्नी को गाँव में पहुँचाकर नागमहाशय कुमारटोली स्थित घर में रहने लगे। सुरेश पूर्ववत् नित्य आते और उन दोनों में अव विना किसी विघ्न-वाधा के धर्म-चर्चा होती। परन्तु अव केवल चर्चा से नागमहाशय की तृप्ति नहीं होती थी। वे कहने लगे, "केवल वातों में ही जीवन वीता जा रहा है, प्रत्यक्ष दर्शन विना जीवन-धारण निष्फल हुआ जा रहा

है !" ठीक इसी समय एक दिन सुरेश जब केशवचन्द्र सेन के ब्राह्मसमाज में गए हुए थे, तो वहाँ उन्होंने सुना कि दक्षिणेश्वर में एक साधु रहते हैं—वे काम-कांचन त्यागी हैं, सर्वदा भगवत्-प्रसंग में तन्मय रहते हैं और उन्हें बारम्बार भाव-समाधि होती है। सुरेश ने जब यह सुना, तो उनकी इच्छा हुई कि एक दिन नागमहाशय को साथ लेकर उक्त साधु को देख आवें। परन्तु बीच में ऐसे अनेक प्रसंग आ गए, जिनके कारण वे नाग-महाशय को उपर्युक्त बात न बतला सके। इस प्रकार दो महीने बीत गए। एक दिन सुरेश ने नागमहाशय से कहा, "सुना है, दक्षिणेश्वर में एक पहुँचे हुए साधु रहते हैं, दर्शन करने चलोगे ?" नागमहाशय ने तुरन्त उत्तर दिया, "आज ही चलो।" अतः उसी दिन दोनों भोजन के पश्चात् दक्षिणेश्वर जाने के लिए निकल पड़े। उन्होंने सुना था—दक्षिणेश्वर कलकत्ते के उत्तर में है, अतः वे उसी दिशा में चलने लगे। चैत का महीना था। सिर पर सूर्य मानो आग उगल रहा था। आकाश, अन्तरिक्ष, धरती—सभी आग-से तप रहे थे। पर वे दोनों किसी बात की परवाह न करते हुए अपनी धुन में चले जा रहे थे, मानो कोई अदृश्य शक्ति उनको खींचे ले जा रही हो ! उन्हें यह मालूम नहीं था कि दक्षिणेश्वर कितनी दूरी पर है। दोनों एकाग्र मन से उत्तर की ओर चलते जा रहे थे। बड़ी दूर जाने के बाद उन्होंने एक राहगीर से दक्षिणेश्वर का रास्ता पूछा। उसने कहा, "आप लोग तो दक्षिणेश्वर पीछे छोड़ आए।" उसने रास्ता दिखला दिया। इस प्रकार वे दोनों लगभग दो बजे रानी रासमणि के दक्षिणेश्वर-स्थित काली-मन्दिर में आ पहुँचे।

अहा ! कैसा मनोहर स्थान ! मानो देवताओं की निभृत

लीला-भूमि हो ! संसार का कोई कोलाहल नहीं। पुष्पों के मधुर सौरभ से सारा उद्यान मानो भरा-भरा है। कैसा स्निग्ध समीर ! कितना सुन्दर सरोवर ! कहीं पर उच्चशिखर देव-मन्दिर हैं, तो कहीं पर नवपल्लवित वृक्ष मानो अपनी शाखाएँ हिलाते हुए धीर-स्वर से पुकार रहे हैं—'आओ, आओ, संसार-सन्तप्त पथिक, यही तो शान्ति का एकमात्र स्थान है !'

वगीचा देखते-देखते वे भगवान श्रीरामकृष्ण देव के कमरे के पूर्व ओर के दरवाजे के पास आ पहुँचे। दरवाजे के वाजू से एक दाढ़ीवाले सज्जन वैठे हुए थे। नागमहाशय ने उनसे पूछा, "अच्छा महाशय, यहाँ एक ब्रह्मचारी रहते हैं न, वे कहाँ हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, एक रहते तो हैं। वे आज चन्दननगर गए हुए हैं। तुम लोग और कभी आओ।"

इतना कष्ट सहकर वे दोनों वहाँ गए थे, अतः उपर्युक्त उत्तर कान में पड़ते ही वे हताश हो गए। वे लोग दुःख से अवसन्न-से हो गए। पर अव उपाय क्या था ! शिष्टाचार के नाते वे उस सज्जन से एक-दो वातें करके विदा लेने ही वाले थे कि नागमहाशय ने देखा, मानो कोई दरवाजे की दरार में से इशारा करके उन्हें वुला रहा है। नागमहाशय को मानो किसी ने वतला दिया—ये ही तो वे साधु हैं ! उस दाढ़ीवाले सज्जन की वातों की उपेक्षा कर उन दोनों ने कमरे के अन्दर प्रवेश किया।

उस दाढ़ीवाले सज्जन का नाम था प्रतापचन्द्र हाजरा। नागमहाशय कहते, "हाय, हाय, भगवान की कैसी अद्‌भुत माया है ! श्रीरामकृष्ण देव के समीप वारह वर्ष रहने पर भी हाजरा महाशय उनको पहचान न सके ! सव भगवान के हाथ में है।

उनकी कृपा विना उनका ज्ञान होना सम्भव नहीं। वे यदि कृपा करके स्वयं को जानने दें, तभी जीव उनको जान सकता है। भले ही कोई सौ वर्ष तक जप-ध्यान करता रहे, पर यदि उनकी कृपा न हुई, तो उनको जानना असम्भव है।"

श्रीरामकृष्ण देव के जीवन की एक घटना का उल्लेख करते हुए स्वामी सुवोधानन्दजी * उपर्युक्त वात का उदाहरण देते थे :—"अपने भांजे हृदय के साथ श्रीरामकृष्ण एक दिन कालीघाट गए। मन्दिर के पूर्व में जो तालाव है, उसके उत्तरी किनारे पर उस समय घनी झाड़ी थी। श्रीरामकृष्ण क्या देखते हैं कि वहीं पर श्रीजगदम्वा लाल किनार की साड़ी पहने हुए कुमारी-वेश में कुछ अन्य कुमारियों के साथ पतिंगे पकड़कर खेल रही हैं! देखते ही वे 'माँ, माँ' कहते हुए समाधिमग्न हो गए। समाधि से नीचे आने के वाद जव वे मन्दिर के अन्दर गए, तो देखा कि जो साड़ी पहनकर माँ कुमारी-वेश में खेल रही थीं, वही जगदम्वा की श्रीमूर्ति के अंग पर शोभा पा रही है। उन्होंने जव यह सारी घटना हृदय को सुनाई, तो हृदय कहने लगे, 'मामा, तुमने यह वात मुझे उसी समय क्यों नहीं वताई, मैं दौड़कर माँ को पकड़ लेता।' श्रीरामकृष्ण देव हँस-कर वोले, 'सो क्या होता है रे! माँ यदि अपने आपको पकड़ में न आने दें, तो किसका वस कि उनको पकड़ सके! उनकी कृपा विना कोई उनके दर्शन नहीं पा सकता।'"

पहले दिन से ही नागमहाशय का मन हाजरा के प्रति कैसा-कैसा हो गया था। वे कहते, "श्रीरामकृष्ण के पास रहकर भी उन्होंने सत्य वोलना नहीं सीखा। झूठ वोलकर वे पहले दिन

* भगवान श्रीरामकृष्ण देव के एक अन्तरंग संन्यासी शिष्य।

ही हमें टरका देना चाहते थे, पर दयामय श्रीरामकृष्ण ने स्वयं होकर अपने चरणकमलों में हमें आश्रय दिया।"

चतुर्थ अध्याय

श्रीरामकृष्ण-दर्शन

नागमहाशय और सुरेश ने कमरे में प्रवेश करने पर देखा कि श्रीरामकृष्ण उत्तर की ओर मुँह करके एक छोटे तख्त पर पैर फैलाकर बैठे हैं—मुख पर मृदु-मन्द हँसी है। सुरेश ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और जमीन में चटाई पर बैठ गए। नागमहाशय ने साष्टांग प्रणाम किया, पर जब वे पद-धूलि लेने लगे, तो श्रीरामकृष्ण ने अपने पैरों को समेट लिया और स्पर्श नहीं करने दिया। नागमहाशय सोचने लगे, "मैं अब भी इन पवित्र साधु के चरणों को स्पर्श करने के योग्य नहीं हुआ!" वे उठकर एक किनारे बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण ने दोनों का परिचय पूछा—क्या नाम है,कहाँ रहते हो, क्या करते हो, संसार में तुम्हारे और कौन-कौन हैं, विवाह हुआ है या नहीं—आदि-आदि। तदनन्तर बातचीत के प्रसंग में श्रीरामकृष्ण कहने लगे, "संसार में ठीक पाँकाल मछली के समान रहना चाहिए। संसार में रहने में दोष क्या? देखो, पाँकाल मछली रहती तो पंक (कीचड़) में है, पर उसके शरीर में पंक नहीं लगता। उसी प्रकार संसार में रहना चाहिए, परन्तु उसमें का आसक्तिरूपी मल या कीच मन पर लगने नहीं देना चाहिए।" नागमहाशय टकटकी लगाए श्रीरामकृष्ण देव के मुखारविन्द की ओर देख रहे थे। श्रीरामकृष्ण ने पूछा, "ऐसा क्या देख रहे हो?"

नागमहाशय—जी, आपको देखने के लिए आया हूँ, सो आपकी ओर देख रहा हूँ।

थोड़ी देर बातचीत करने के बाद श्रीरामकृष्ण ने कहा, " इधर पंचवटी में जाकर कुछ देर ध्यान कर आओ।"

लगभग आधा घण्टा ध्यान कर सुरेश और नागमहाशय श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में वापस आए। तत्पश्चात् श्रीरामकृष्ण उन दोनों को देवमन्दिर दिखलाने ले गए।

श्रीरामकृष्ण सामने थे, सुरेश और नागमहाशय उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। श्रीरामकृष्ण देव के कमरे से लगकर ही द्वादश शिवमन्दिर हैं। श्रीरामकृष्ण प्रत्येक मन्दिर में जा-जा जिस भाँति शिवलिंग को प्रणाम और उनकी प्रदक्षिणा करने लगे, उसी भाँति नागमहाशय भी प्रणाम और प्रदक्षिणा करने लगे। पर सुरेश ब्राह्मसमाजी थे, सगुण रूप आदि नहीं मानते थे, अतः वे चुपचाप देखने लगे। उसके वाद विष्णुमन्दिर आया। वहाँ पर भी उसी प्रकार प्रणाम आदि करके श्रीरामकृष्ण श्रीभवतारिणी काली माई के मन्दिर की ओर चले।

श्रीभवतारिणी के मन्दिर में प्रवेश करते ही श्रीरामकृष्ण का भावान्तर हो गया। यह देखकर नागमहाशय और सुरेश बड़े विस्मित हो गए। चंचल बालक जिस प्रकार माता का अंचल पकड़कर उसके चारों ओर घूमने लगता है, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण भी श्रीभवतारिणी की प्रदक्षिणा करने लगे। तत्पश्चात् श्रीमहादेव और श्रीजगदम्वा के चरणों में माथा टेक वे अपने कमरे में आकर वैठे।

लगभग पाँच वजे सुरेश और नागमहाशय ने श्रीरामकृष्ण देव से जाने की अनुमति माँगी। श्रीरामकृष्ण ने कहा, " फिर से आना, बार-वार आते रहने से तब तो परिचय होगा।"

घर लौटते समय नागमहाशय केवल एक ही विचार में

मग्न थे—"ये हैं कौन ? साधु हैं या सिद्ध महापुरुष, अथवा और भी कुछ ?"

सुरेश कहते हैं, "उस दिन का वह भाव-भक्तिपूर्ण चित्र नागमहाशय के हृदयपटल पर चिरकाल के लिए अंकित हो गया।" आहुति डालने से जिस प्रकार अग्नि भड़क उठती है, उसी प्रकार अव नागमहाशय के अन्तःकरण में ईश्वर-प्राप्ति के लिए तीव्र व्याकुलता जागृत हो गई—वे भगवान के लिए पागल-से हो गए। आहार-निद्रा आदि विलकुल छूट-से गए, यहाँ तक कि लोगों के साथ वातचीत भी वन्द हो गई; वस सारे समय वे सुरेश के साथ श्रीरामकृष्ण सम्बन्धी वातों में ही मग्न रहते।

लगभग एक सप्ताह के वाद वे दोनों फिर श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने गए। नागमहाशय की उन्मत्त अवस्था देखते ही श्रीरामकृष्ण को भावावेश हो आया, वे कह उठे, "आ गया ! ठीक हुआ ! तेरे लिए ही तो मैं इतने दिन से यहाँ वैठा हूँ !" फिर नागमहाशय को अपने समीप वैठाते हुए वोले, "भय क्या है ? तुम्हारी तो वहुत उच्च अवस्था है।" उस दिन भी श्रीरामकृष्ण ने उन दोनों को पंचवटी में जाकर ध्यान करने को कहा। उन लोगों के पंचवटी में चले जाने के कुछ समय वाद श्रीरामकृष्ण स्वयं उधर गए और नागमहाशय को एक चीज लाने अपने कमरे में भेजा। नागमहाशय के चले जाने पर श्रीरामकृष्ण सुरेश से वोले, "देखा ? इसकी अवस्था मानो जलती हुई आग के समान है।" इतने में नागमहाशय लौट आए। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें फिर आज्ञा दी, "अच्छा, अव जरा मेरा दुपट्टा ले आओ।" दुपट्टा ले आने पर उन्होंने कहा, "इस वार मेरा लोटा ले आओ।" लोटा आ जाने पर कहा, "इसे पानी से भर लाओ।"

इत्यादि-इत्यादि। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण देव की सेवा करने का सुयोग पाकर नागमहाशय के आनन्द की सीमा न रही! मन में केवल एक ही दुःख रहा—श्रीरामकृष्ण ने पद-धूलि नहीं लेने दी।

इसके पश्चात् एक दिन नागमहाशय अकेले दक्षिणेश्वर गए। सुरेश कुछ कार्यवश साथ न जा सके। उस दिन भी नागमहाशय को देखकर श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो गए। वे बैठे हुए थे, कुछ बड़बड़ाते हुए उठ खड़े हुए। उनकी यह अवस्था देख नागमहाशय बड़े भयभीत हो गए। श्रीरामकृष्ण उनसे बोले, "अजी, तुम डाक्टरी करते हो न? जरा देखो तो, मेरे पैर में क्या हुआ है!" श्रीरामकृष्ण की इस प्रकार स्वाभाविक वाणी सुनकर नागमहाशय थोड़ा आश्वस्त हुए; पैर पर हाथ फिरा-फिराकर उन्होंने अच्छी तरह परीक्षा की और कहा, "कहाँ, कुछ तो दिखता नहीं।" श्रीरामकृष्ण बोले, "अच्छी तरह देखो न, क्या हुआ है।" अहा! अब नागमहाशय समझे! उनके मन का वह अन्तिम दुःख भी आज दूर हो गया—श्रीचरणों को स्पर्श करने का सौभाग्य पाकर वे अपने को धन्य समझने लगे और उनकी आँखों से आँसू की धारा वह चली। वे बारम्बार उन वांछित-चरणों को अपने हृदय और मस्तक पर धारण करने लगे। नागमहाशय कहा करते, "उनके (श्रीरामकृष्ण के) पास कुछ भी माँगना नहीं पड़ता था; वे तो मन का भाव जानकर तुरन्त मनोकामना पूरी कर देते थे। भगवान श्रीरामकृष्ण कल्पतरु हैं, जिसने जिस बात की प्रार्थना की है, उसे वह तुरन्त प्राप्त हुई है।"

नागमहाशय की अब दृढ़ धारणा हो गई कि श्रीरामकृष्ण साक्षात् नारायण हैं। वे कहते, "श्रीरामकृष्ण देव के पास कुछ

दिन आने-जाने से ही मैं समझ गया कि ये ही साक्षात् नारायण हैं—गुप्त रूप से दक्षिणेश्वर में वैठकर लीला कर रहे हैं।" यदि कोई पूछता, "आपने कैसे जाना ?" तो इस पर वे उत्तर देते, "उन्हीं ने (श्रीरामकृष्ण ने) कृपा करके स्वयं होकर यह समझा दिया कि 'वे कौन हैं'। उनकी कृपा विना भला कौन उन्हें जान सकता है ? उनकी कृपा के विना केवल हजारों वर्ष की तपश्चर्या से कुछ नहीं हो सकता; ईश्वर की कृपा के विना सभी व्यर्थ है।"

एक दिन श्रीरामकृष्ण ने अपनी देह की ओर संकेत करते हुए नागमहाशय से पूछा, "इसके सम्वन्ध में तुम्हारा क्या मत है ?" नागमहाशय हाथ जोड़कर वोले, "प्रभो ! यह मुझे वतलाना न होगा ! मैंने आपकी ही कृपा से जाना है कि आप 'वही' (नारायण) हैं !" यह सुनते ही श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गए और उसी स्थिति में उन्होंने अपना दाहिना पैर नागमहाशय के वक्ष पर रख दिया। उनके ऐसा करते ही एकाएक नागमहाशय का भावान्तर हो गया, वे देखने लगे—सभी चराचर वस्तुओं में मानो एक दिव्य ज्योति उमड़ रही है।

नागमहाशय कहते, "श्रीरामकृष्ण के आगमन से संसार में धर्म की वाढ़ आ गई है, उससे सव कुछ सरावोर हो जायगा। हाँ, सव कुछ ! श्रीरामकृष्ण पूर्णब्रह्म नारायण हैं, इस प्रकार सर्व भावों का समन्वय आज तक अन्य किसी अवतार में नहीं हुआ।"

एक दिन श्रीरामकृष्ण भोजन के उपरान्त विश्राम कर रहे थे कि ऐसे समय नागमहाशय दक्षिणेश्वर आ पहुँचे। ज्येष्ठ का महीना था, उस दिन भीषण गरमी थी। नागमहाशय के

हाथ में पंखा दे श्रीरामकृष्ण सो गए। कुछ समय तक पंखा झलने के बाद नागमहाशय का हाथ भारी हो गया, पर श्रीरामकृष्ण के आदेश बिना वे पंखा झलना भला कैसे बन्द कर सकते थे! कुछ समय बाद उनके लिए हाथ हिलाना एकदम असम्भव-सा हो गया। श्रीरामकृष्ण ने बस त्योंही उनका हाथ पकड़कर हवा करना बन्द करा दिया। नागमहाशय कहते, "भगवान श्रीरामकृष्ण देव की निद्रावस्था सामान्य जीव की निद्रा के समान नहीं थी। वे सर्व क्षण जगे रहते थे। एकमात्र भगवान को छोड़, साधक या सिद्ध पुरुष की ऐसी अवस्था कभी नहीं हो सकती।"

एक दिन नागमहाशय श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में बैठे हुए थे। उसी समय "चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्" कहते हुए स्वामी विवेकानन्द (उस समय के नरेन्द्रनाथ) ने प्रवेश किया। श्रीरामकृष्ण नागमहाशय की ओर संकेत करते हुए नरेन्द्र से बोले, "देख, इसमें ही यथार्थ दीनता का भाव है—तनिक भी ढोंग नहीं।" नरेन्द्र ने कहा, "जब आप कह रहे हैं, तो अवश्य होगा।" नागमहाशय और नरेन्द्र में वार्तालाप होने लगा।

बातचीत के प्रसंग में नागमहाशय ने कहा,—

"सब कुछ तुम्हारी इच्छा है माँ, इच्छामयी हो तुम, तारा!
अपना कर्म तुम आप करती हो, लोग कहते हैं मैंने किया।"

नरेन्द्र— मैं 'बे-फे' नहीं जानता। मैं ही साक्षात् परमात्मा हूँ। मुझमें ही सारे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति और लय हो रहा है!

नागमहाशय—आपकी क्या बिसात कि एक केश को भी

सीधा कर सकें—विश्व-ब्रह्माण्ड की बात तो दूर रहे ! उनकी इच्छा बिना एक पत्ता तक नहीं हिल सकता !

नरेन्द्र— मेरी इच्छा बिना ये चन्द्र-सूर्य नहीं चल सकते। मेरी इच्छा से ही यह विराट् ब्रह्माण्ड यन्त्रवत् परिचालित हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण छोटे तख्त पर बैठकर दोनों की बातचीत सुन रहे थे। वे हँसते-हँसते नागमहाशय से बोले, "देख, वह (नरेन्द्र) नंगी तलवार है, उसे वे सब बातें शोभा देती हैं। नरेन्द्र वैसा बोल सकता है।" यह सुनते ही नागमहाशय की धारणा हो गई—'नरेन्द्र मनुष्य नहीं हैं, रामकृष्ण-लीला की पूर्ति के लिए साक्षात् महादेव उनके रूप में अवतीर्ण हुए हैं।' वे नरेन्द्र को प्रणाम करके चुप हो गए। बस, उनके मन में यह धारणा चिरकाल के लिए दृढ़ हो गई। एक दिन किसी ने उनसे पूछा था, "आपने क्या कभी किसी मुक्त पुरुष के दर्शन किए हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया था, "मुक्त पुरुष की क्या बात, मैंने साक्षात् मुक्तिदाता श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन किए हैं, और उनके प्रमुख पार्षद शिवावतार स्वामीजी (स्वामी विवेकानन्द) को भी देखा है।"

श्रीरामकृष्ण जो कुछ कहते, नागमहाशय उसे वेद-वाक्य के समान मानते। वे कहते, "श्रीरामकृष्ण हँसी-ठट्ठे में भी जो बात कह जाते, उसमें भी गूढ़ अर्थ भरा रहता था। मैं ठहरा मूर्ख, मैं भला उनको क्या समझूँ ?"

इस प्रकार कुछ महीने दक्षिणेश्वर आने-जाने के बाद एक दिन नागमहाशय ने श्रीरामकृष्ण को एक भक्त से कहते हुए सुना, "देखो, डाक्टर, वकील, मुख़्तार, दलाल आदि लोगों का

ठीक-ठीक धर्म-लाभ होना बड़ा कठिन है। डाक्टर तो सब समय दवा और रोगी के बारे में सोचता रहता है, फिर वह कैसे भगवान में अपने मन को लगा सकेगा?" इसके कुछ दिन पूर्व से नागमहाशय देखते कि उनके पास आनेवाले रोगियों की मूर्ति सदैव उनकी आँखों के सामने आ जाती थी। इससे उनके ध्यान में बड़ी बाधा पड़ती थी। श्रीरामकृष्ण की बात सुनकर उन्होंने मन-मन संकल्प किया, "जिस व्यवसाय को श्रीरामकृष्ण देव ने ईश्वर-लाभ के लिए विघ्नस्वरूप माना है, उस व्यवसाय द्वारा अर्थोपार्जन करना ठीक नहीं।" उन्होंने उसी दिन घर आकर दवाई की पेटी और चिकित्सा की पुस्तकों को गंगा में बहा दिया और गंगा-स्नान करके घर लौट आए। अब केवल ठीके का काम ही उनकी जीविका का एकमात्र साधन रहा।

धीरे-धीरे दीनदयाल के कानों में यह बात पहुँची कि नागमहाशय ने डाक्टरी छोड़ दी है। वे बड़े उद्विग्न हो कलकत्ता दौड़े आए। अब तक पिता के प्रतिनिधि के रूप में ही नागमहाशय ठीके का काम चला रहे थे। दीनदयाल ने पालबाबुओं से अनुरोध करके अपने स्थान पर अपने पुत्र को स्थायी रूप से रखवा दिया और अपने ग्राम लौट गए। कलकत्ते में यह उनका अन्तिम बार आना था।

ठीके के काम में नागमहाशय को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता था। जब कभी बागबाजार या खिदिरपुर को जल-मार्ग से माल भेजना होता, तभी उनको साथ जाना पड़ता। अब डाक्टरी छोड़ देने पर उन्हें जप-ध्यान आदि की विशेष सुविधा हो गई, और दक्षिणेश्वर जाने का भी काफी अवसर मिलने लगा। घर में गंगा-जल रखने के लिए एक सुन्दर साफ-

सुथरा स्थान था, वहीं पर घड़े के पास बैठकर वे ध्यान करते। जिस दिन उन्हें ठीके के काम से वागवाजार जाना पड़ता, उस दिन वे नदी के उस पार जंगल या किसी वगीचे में जाकर एक निर्जन स्थान ढूँढ़ लेते और वहीं बैठकर ध्यान करते थे। एक दिन इस प्रकार ध्यान करते-करते उन्हें कुछ अद्‌भुत दर्शन हुए। घर लौटने पर उन्होंने सुरेश से कहा, "आज के समान आनन्द मुझे ध्यान में और कभी नहीं मिला।"

श्रीरामकृष्ण के पास वारम्वार आने-जाने से धीरे-धीरे नागमहाशय के मन में अत्यन्त तीव्र वैराग्य जग उठा। संसार-त्याग करने की अनुमति लेने वे दक्षिणेश्वर गए। पर ज्योंही उन्होंने श्रीरामकृष्ण के कमरे में प्रवेश किया, उन्होंने श्रीराम-कृष्ण देव को भावावेश में यह कहते हुए सुना, "संसार-आश्रम में दोष क्या ? भगवान में मन रहने से ही हुआ ! गृहस्थाश्रम कैसा है, जानते हो ?—जैसे किले में रहकर लड़ाई करना !" यह भी कैसी विडम्वना है ! जिन्होंने चिनगारी फूँककर यह वैराग्यरूपी दावानल धवका दिया, वे ही कह रहे हैं, "तुम जनक के समान गृहस्थाश्रम में रहो। तुम्हें देखकर गृहस्थ लोग यथार्थ गार्हस्थ्य-धर्म की शिक्षा ग्रहण करेंगे।" अव भला उपाय क्या था ? नागमहाशय कहते, "श्रीरामकृष्ण देव के श्रीमुख से एक वार जो निकल जाता, उसके विपरीत आचरण करने की शक्ति किसी में नहीं थी। जो जिस मार्ग का अधिकारी होता, उसे वे एक-दो वातों में ही समझा देते थे।"

श्रीरामकृष्ण की आज्ञा सिर पर लेकर नागमहाशय घर लौटे, पर उनका मन वड़ा व्याकुल हो गया। वे दिन-रात केवल "हा भगवान ! हा भगवान !" कहते रहते। कभी वे धरती

पर धम से गिर पड़ते, तो कभी काँटों पर गिर पड़ने से उनका सारा शरीर लहूलुहान हो जाता। उनको खाने की भी सुधि नहीं रहती। जिस दिन सुरेश जोर करके कुछ खिला देते, उस दिन कुछ अन्न पेट में चला जाता था, अन्यथा उपवासी ही रह जाते। दिन कैसे बीत गया, कब कहाँ हूँ—किसी बात की ओर ध्यान नहीं! घर लौटते कभी रात के दो पहर बीत जाते, कभी दो बज जाते! साधारण ठीके का काम करना भी उनके लिए अब दूभर हो उठा। कुछ समय पूर्व रणजीत हाजरा नामक एक गरीब परन्तु धर्मभीरु व्यक्ति से उनका परिचय हुआ था। उनका जिस दिन काम पर जाना असम्भव हो जाता, उस दिन रणजीत हाजरा उनका काम सँभाल लेता था।

इस बीच नागमहाशय को एक बार अपने ग्राम जाना पड़ा। उनकी पत्नी उनकी अवस्था देखकर बहुत चिन्तित हो गईं। वे समझ गईं कि गृहस्थाश्रम में अब पतिदेव का इतना-सा भी मन नहीं रहा। नागमहाशय ने भी उन्हें समझा दिया, "देखो, यह देह श्रीरामकृष्ण देव के चरणों में अर्पित हो चुकी है। अब इसके द्वारा संसार का कोई कार्य न हो सकेगा।"

नागमहाशय के घर के पास की जमीन में उनकी बहिन शारदामणि ने एक कद्दू की बेल लगाई थी। वह काफी बड़ी हो गई थी। एक दिन उसके समीप मुहल्ले का कोई आदमी अपनी गाय बाँध गया। गाय उस बेल के लोभ से बारम्बार उस ओर लपकती, परन्तु रस्सी छोटी होने के कारण वह बेल तक नहीं पहुँच पा रही थी। इस प्रकार पुनः-पुनः गाय के प्रयत्न को विफल होते देखकर नागमहाशय को दया आ गई और 'जाओ माँ, खाओ' कहते हुए उन्होंने रस्सी खोल दी। गाय

बड़ी तृप्ति के साथ उस बेल को खाने लगी। दीनदयाल तो यह देखकर सन्न हो गए और कड़ी भर्त्सना करते हुए बोले, "आप कमाना तो छोड़ दिया; घर-गृहस्थी को जिससे दो-चार पैसे की आमदनी हो, वह करना तो दूर रहा, उलटे इस प्रकार नुकसान क्यों करता है ?" बाद में बातचीत के प्रसंग में बोले, "डाक्टरी छोड़कर तो बैठ गया, अब अपना पेट कैसे पालेगा, जिन्दगी कैसे बितायगा ?"

नागमहाशय—सो सब भगवान देखेंगे, आप इसकी चिन्ता न करें।

दीनदयाल—हाँ, हाँ, सब समझता हूँ ! अब नंगा घूमेगा और मेंढक खाकर रहेगा।

नागमहाशय चुप हो रहे। उन्होंने पहने हुए कपड़े उतार दिए और आँगन में पड़े हुए एक मरे मेंढक को उठाकर खाते-खाते उन्होंने अपने पिता से कहा, "देखिए, मैंने इसी क्षण आपकी दोनों आज्ञाओं का पालन कर दिया। आप अब और खाने-पीने की चिन्ता न करें। आप बैठे-बैठे केवल भगवान का नामजप करते रहें। आपके पैर पकड़ता हूँ, इस उमर में अब और संसार-चिन्ता न करें।" पुत्र की उन्मादावस्था देखकर दीनदयाल ने बहू से कह दिया, "अब से उसके मत के विरुद्ध कुछ मत करना।"

नागमहाशय जितने दिन ग्राम में रहते, उतने दिन दीनदयाल को संसार-चिन्ता करने का समय ही न देते थे। वे सर्वदा शास्त्रों का पाठ करके अपने पिता को सुनाया करते। दीनदयाल के पास जो लोग गप-शप करने आते, नागमहाशय उनकी भर्त्सना करते हुए कहते, "देखिए, आप लोग यहाँ आकर

पिताजी के साथ संसार की चर्चा न किया करें, या फिर यहाँ आना ही वन्द कर दें।"

नागमहाशय के कलकत्ता लौट आने पर सुरेश ने उनसे उनके पिता के सम्वन्ध में पूछा। इस पर उन्होंने कहा, "संसार-रूपी काल-सर्प ने जिसको एक वार डस लिया है, उसकी रक्षा नहीं हो सकती। महामाया की कृपा विना कुछ नहीं हो सकता।" तत्पश्चात् वे "जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण, मेरे पिता पर दया करो" कहते हुए व्याकुल होकर रोने लगे। वाद में शान्त होकर वोले, "अव भी वावा विषय-चिन्तन में लगे रहते हैं। आग लगे इन सांसारिक वातों में! अव भी वे सांसारिक चर्चा से अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सके हैं। इधर वूढ़े हो गए हैं, कुछ करने की शक्ति उनमें रही नहीं, स्वयं कहीं आ-जा नहीं सकते, पर यदि ग्राम का कोई व्यक्ति उनसे मिलने आ जाय, तो वस संसार-चर्चा आरम्भ हो जाती है।"

ग्राम से लौट आने के वाद एक दिन नागमहाशय ने श्रीरामकृष्ण देव से कहा, "उन (भगवान) पर मेरी निर्भरता तो हुई नहीं! अव भी तो अपनी चेष्टा वनी है!" श्रीरामकृष्ण अपने शरीर की ओर संकेत करते हुए वोले, "इस पर यदि प्रेम रहे, तो सव ठीक हो जायगा।" नागमहाशय कहते, "वे (श्रीरामकृष्ण) जिससे चाहें अपनी इच्छा पूरी करा ले सकते हैं। जीव का भला क्या वस? वे तो मनुष्य के मन को मिट्टी के लोंदे के समान इच्छानुसार आकार दे सकते थे; क्या मनुष्य ऐसा कर सकता है!"

नागमहाशय का तीव्र वैराग्य देखकर श्रीरामकृष्ण ने एक दिन उनसे फिर कहा, "घर में ही रहो, किसी प्रकार दो मूठे अन्न और मोटे कपड़े की व्यवस्था हो जायगी।"

नागमहाशय— घर में कैसे रहूँ? दूसरों का दुःख-कष्ट देखकर कैसे चुपचाप रहूँ?

श्रीरामकृष्ण— अजी, मैं सच-सच कहता हूँ, घर में रहने से तुम्हें कोई दोष न होगा। तुम्हें देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जायँगे।

नागमहाशय— गृहस्थाश्रम में मेरे दिन कैसे कटेंगे?

श्रीरामकृष्ण— तुम्हें और कुछ करना न होगा, केवल साधु-संग करते जाना।

नागमहाशय— साधु को कैसे पहचानूँ? मैं मूर्ख जो ठहरा!

श्रीरामकृष्ण— अजी, तुम्हें साधु खोजना न पड़ेगा; तुम घर में ही रहोगे, सच्चे साधु स्वयं होकर तुमसे मिलने आ जायँगे।

जैसे-जैसे दिन वीतने लगे, नागमहाशय सोचने लगे—जब तक इस पेट के धन्धे में फँसा रहूँगा, तब तक शान्ति की आशा कहाँ? उन्होंने निश्चय किया—'ठीके का काम रणजीत को सौंपकर अब निश्चिन्त मन से ईश्वर-चिन्तन करूँगा।' अवसर देखकर उन्होंने पालबावुओं से यह बात कही। पालबावुओं ने पूछा, "फिर आपका चलेगा कैसे?" नागमहाशय बोले, "रणजीत दया करके जो कुछ दे देंगे, उससे किसी प्रकार निर्वाह हो जायगा।"

पालबावुओं ने देखा, नागमहाशय से अब संसार का काम-काज होना असम्भव है। अतः उन्होंने सोचा, उनके लिए अपने आश्रित के नाते अन्न-वस्त्र की कुछ व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए। उन्होंने रणजीत को बुलवाया और उससे यह स्वीकार

कराकर कि वह आमदनी का आधा भाग नागमहाशय को देगा, उन्होंने उसको नागमहाशय का कार्य सौंप दिया। रणजीत नागमहाशय के स्वभाव से पूरी तरह परिचित था। इस डर से कि कहीं वे सारा पैसा एकदम न खर्च कर डालें, वह उनको आवश्यक खर्च के लायक पैसे देकर बाकी पैसे डाक द्वारा दीनदयाल के पास भेज देता था। जब श्रीरामकृष्ण देव को इस व्यवस्था की बात मालूम हुई, तो वे कहने लगे, "चलो, अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ।"

अब नागमहाशय निश्चिन्त होकर कठोर साधना में लग गए और श्रीरामकृष्ण देव के पास हमेशा आने-जाने लगे। इसके पूर्व वे रविवार और छुट्टी के दिन दक्षिणेश्वर कभी नहीं जाते थे; कहते, "रविवार के दिन उनके पास कितने बुद्धिमान, विद्वान् और प्रतिष्ठित लोग आया करते हैं। मैं ठहरा मूर्ख, उनकी बातें भला क्या समझूँ!" इसी लिए श्रीरामकृष्ण देव के अन्य भक्तों के साथ उनका परिचय नहीं हो पाया था। पर अब धीरे-धीरे उनमें से किसी-किसी के साथ उनकी भेंट होने लगी। यही कारण था कि अब वे हमेशा आने-जाने लगे थे।

एक दिन रात के समय गिरीशचन्द्र घोष अपने दो मित्रों के साथ दक्षिणेश्वर आए। उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में प्रवेश करके देखा—एक कोने में एक व्यक्ति अत्यन्त दीन-हीन भाव से, हाथ जोड़े हुए बैठे हैं। उनका शरीर शुष्क-सा है, पर उनकी आँखें नक्षत्र की भाँति चमक रही हैं! श्रीरामकृष्ण देव ने उनके साथ गिरीश का परिचय करा दिया। वह मिलन भी कैसे शुभ समय में हुआ! पहले दिन के परिचय से ही वे दोनों मैत्री के सुदृढ़ पाश में बँध गए!

नागमहाशय अपराह्न में बहुधा गंगातीर पर घूमा करते थे। एक दिन घूमते समय उन्होंने देखा कि एक सौम्य मुद्रावाला युवक वहाँ टहल रहा है। *नागमहाशय* ने सोचा—*शायद ये* श्रीरामकृष्ण के भक्त हैं। वे उस युवक के पास गए और परिचय होने पर उन्होंने जाना कि उनका अनुमान सत्य है। वे थे स्वामी तुरीयानन्द (उस समय के हरिराज)। तुरीयानन्दजी के कठोर ब्रह्मचर्य की बात बतलाते हुए नागमहाशय कहते, "वे यदि ऐसा न होते, तो क्या यों ही श्रीरामकृष्ण के कृपापात्र बन गए ?"

इसी समय से नागमहाशय ने कुरता और जूते का व्यवहार एकदम त्याग दिया। बारहों महीने वे अपने शरीर पर एक भागलपुरी शाल डाले रहते थे। आहार के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कहा था, "ईश्वरेच्छा से जब जो मिल जाय, वही खा लेना; तुम्हारे लिए इस सम्बन्ध में कुछ विधि-निषेध नहीं है; उससे तुम्हें किसी प्रकार का दोष नहीं होगा।" इसी लिए नागमहाशय ने आहार के सम्बन्ध में कोई विशेष पाबन्दी नहीं रखी थी—जब जो मिल जाता, वही खा लेते थे। साधारणतया उनका आहार बहुत कम था, सन्ध्या समय बस एक-दो कौर खा लेते; कहते, "जब तक देह बनी है, तब तक कुछ-न-कुछ 'टैक्स' (कर) देना ही होगा!" रसना के चटोरीपन को जीतने के लिए वे भोजन के समय नमक या किसी मीठी चीज का व्यवहार नहीं करते थे। कहते, "उससे जीभ को चाट लग जायगी।"

नागमहाशय का आधा मकान किराए पर दिया गया था। मेदिनीपुर-निवासी कीर्तिवास नामक व्यक्ति सपरिवार वहाँ रहता था और चावल का व्यापार करता था। अतएव कभी-

कभी घर में बहुतसी भूसी जमा हो जाती थी। एक दिन नागमहाशय के मन में उठा, "अच्छा, भूसी खाकर ही रहा जाय न। जो भी कुछ खाकर शरीर-रक्षा करने से काम, अच्छा-बुरा स्वाद क्या देखना।" बस, बिना नमक या शक्कर मिलाए वे गंगा-जल में भूसी डालकर खा गए। वे दो दिन इस प्रकार कर पाए थे कि कीर्तिवास को यह बात मालूम हो गई। उसने तुरन्त सारी भूसी बेच डाली। उस दिन से वह घर में भूसी जमने नहीं देता था। नागमहाशय कहते थे, "भूसी खाने से मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ; बल्कि शरीर काफी हलका मालूम पड़ता था। यदि दिन-रात खाने-पीने का विचार चलता रहे, तो भगवान को पुकारना कब होगा, उनका स्मरण-मनन कब होगा! सदा खान-पान का अच्छा-बुरा विचार करते रहने से शुचिता का विकार हो जाता है।" कीर्तिवास की नागमहाशय पर बड़ी श्रद्धा थी, वह उन्हें साधु-ज्ञान से देखता। भिखारी आने पर यदि नागमहाशय भिक्षा देने में असमर्थ हो जाते, तो कीर्तिवास उनकी सहायता करता था। सुरेश कहते हैं, "मामा (नागमहाशय) का घर आम रास्ते पर होने के कारण उनके यहाँ नित्य बहुत से भिखारी आते, पर कोई भी खाली हाथ नहीं लौटता था। एक दिन एक वृद्ध वैष्णव उनके द्वार पर भिक्षा के लिए आया। उस दिन उनके यहाँ थोड़े से चावल के सिवा और कुछ न था। कीर्तिवास भी उस समय बाहर गया हुआ था। वे भिखारी के पास आकर अत्यन्त विनीत भाव से बोले, 'आज तो मेरे यहाँ थोड़े से चावल छोड़ और कुछ नहीं है, लेंगे?' वृद्ध वैष्णव उनकी इस प्रकार श्रद्धा देख, बड़े आनन्द से चावल ग्रहण कर चला गया।"

सुरेश कहते, "मेरा नागमहाशय से ३०-३५ वर्ष तक सम्पर्क रहा, पर मैंने उन्हें कभी जलपान करते नहीं देखा। भगवान का प्रसाद और श्रीरामकृष्ण-महोत्सव का प्रसादी सन्देश* छोड़ वे अन्य मिठाई खाते ही न थे, कहते, 'जीभ को चाट लग जायगी।' वे स्वयं कभी अच्छी चीज नहीं खाते थे, पर दूसरों को खिलाना उन्हें वहुत प्रिय था।"

संसारी विषय-चर्चा नागमहाशय भूलकर भी न करते थे; दूसरे यदि करने लगते, तो युक्ति-कौशल से वन्द करा देते। कहते, "जय रामकृष्ण! आज आपने यह क्या प्रसंग उठाया? श्रीरामकृष्ण का नाम लीजिए, जगदम्वा का नाम लीजिए।" यदि उनके मन में किसी भी कारणवश किसी के प्रति क्रोध या तिरस्कार का भाव उदय होता, तो वे अपने निकट जो भी पाते, उसी से अपने शरीर पर निष्ठुरतापूर्वक आघात करने लगते थे। वे कभी किसी की निन्दा नहीं करते थे, किसी के विरुद्ध कोई वात नहीं कहते थे। एक समय एक व्यक्ति के विरुद्ध उनके मुख से कोई वात निकल गई, वस त्योंही उन्होंने पास में पड़ा हुआ एक पत्थर उठा लिया और उससे अपने सिर पर वारम्वार चोट करने लगे। उससे सिर फट गया और खून की धारा वह चली। वह घाव आराम होते लगभग एक मास लग गया। इस सम्वन्ध में वे कहते, "अच्छा हुआ, शठं प्रति शाठ्यम्—पाजीपन के लिए ऐसा ही दण्ड आवश्यक है!"

षड्रिपुओं पर विजय पाने के लिए वे लम्बी उपवास किया करते थे, और कभी-कभी तो पाँच-पाँच दिन तक मुँह में पानी की एक वूँद भी डाले विना रह जाते। एक दिन की

* एक प्रकार की वंगाली मिठाई।

बात है, वे इसी प्रकार दीर्घ उपवास के बाद रसोई बनाने बैठे थे कि सुरेशचन्द्र वहाँ आ उपस्थित हुए। प्रतीत होता है, सुरेश को देखकर उनके मन में कोई विपरीत भावना आई होगी—वे एकदम उठे और 'मेरा अपराध दूर हुआ नहीं' कहते हुए उन्होंने रसोई की हण्डी को पटककर फोड़ दिया। फिर अपने को धिक्कारते हुए वे सुरेश को प्रणाम करने लगे। उस दिन उनका भोजन फिर नहीं हुआ। अधेले का मुरमुरा और अधेले का बताशा खाकर ही पड़े रहे।

सिर-दर्द के कारण नागमहाशय को स्नान करना बन्द कर देना पड़ा था। उन्होंने अपने जीवन के शेष २० वर्ष बिना स्नान किए बिताए। इसलिए उनका शरीर अत्यन्त रूखा-रूखा सा मालूम होता था। कठोर साधना के फलस्वरूप उनके अन्दर का दीन-भाव उनके अंग-अंग पर निखरने लगा। गिरीश कहते, "नाग-महाशय ने इस दुष्ट 'अहंकार' को ऐसा कुचल डाला था कि उसमें फिर से सिर उठाने की शक्ति ही न रह गई थी।" रास्ता चलते समय वे कभी किसी के आगे-आगे नहीं चल सकते थे। वे कुली-मजदूरों के लिए भी रास्ता छोड़ देते और पीछे-पीछे चला करते। वे किसी की छाया पर भी पैर नहीं रख सकते थे, दूसरों के बिस्तर पर भी नहीं बैठ सकते थे।

नागमहाशय प्रेमाभक्ति के साधक होते हुए भी वैधीभक्ति के पक्षपाती थे। वे स्वयं जिस प्रकार कठोर साधना करते, दूसरों को भी उसी प्रकार करने का उपदेश देते थे। इसी बात को लेकर एक दिन सुरेश के साथ उनकी बहस हो गई थी। नागमहाशय के साथ ८-९ बार दक्षिणेश्वर जाने के बाद सुरेश को एक दिन कार्यवश क्वेटा जाना पड़ा। जाने के पूर्व श्रीरामकृष्ण

देव से दीक्षा और साधना के सम्बन्ध में उपदेश ले लेने के लिए नागमहाशय ने सुरेश से बहुत कहा। उस समय सुरेश का मन्त्र पर विश्वास नहीं था, अतः वे नागमहाशय के साथ लम्बी बहस करने लगे। अन्त में यह स्थिर हुआ कि श्रीरामकृष्ण देव जैसी आज्ञा देंगे, वैसा होगा। दूसरे दिन दोनों दक्षिणेश्वर गए और वहाँ पहुँचते ही नागमहाशय ने श्रीरामकृष्ण के सम्मुख सुरेश की दीक्षा की बात उठाई। श्रीरामकृष्ण बोले, "अजी, यह तो ठीक ही कहता है! दीक्षा लेकर साधना करनी पड़ती है, तुम इसकी बात क्यों नहीं मानते?" सुरेश ने कहा, "मन्त्र में मेरा विश्वास नहीं है।" श्रीरामकृष्ण नागमहाशय से बोले, "ठीक है, वह अभी उसके लिए आवश्यक नहीं। होगा, बाद में होगा!"

कुछ समय क्वेटा में रहने के उपरान्त सुरेश का मन दीक्षा लेने के लिए लालायित हो उठा। उन्होंने निश्चय किया, कलकत्ता लौटने पर श्रीरामकृष्ण देव से दीक्षा ले लेंगे। परन्तु जब वे कलकत्ता लौटे, तब श्रीरामकृष्ण देव के लीला-संवरण का समय आ चुका था। समय रहते नागमहाशय की बात नहीं सुनी, यह सोचकर सुरेश मन-ही-मन अपने आपको बहुत धिक्कारने लगे। जब श्रीरामकृष्ण देव ने लीला-संवरण कर लिया, तब तो सुरेश बड़े व्याकुल हो गए। वे रात में नित्य गंगातीर पर जाकर बैठे रहते और अपने मन का दुःख पतितपावनी जाह्नवी के समक्ष निवेदन करते। एक दिन तो वे धरना देकर गंगा के किनारे ही पड़े रहे। रात्रि के अन्तिम पहर में उन्होंने देखा—भगवान श्रीरामकृष्ण गंगा में से उठकर आ रहे हैं! यह देखकर सुरेश के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। श्रीरामकृष्ण देव उनके

समीप आए और कान में वीजमन्त्र डाल दिया। सुरेश ज्योंही उनकी पद-धूलि लेने बढ़े, त्योंही वे अन्तर्धान हो गए! अस्तु।

इस प्रकार लगभग चार वर्ष वीत गए। धीरे-धीरे भगवान श्रीरामकृष्ण के लीलावसान का समय निकट आ गया। दक्षिणेश्वर का वह आनन्द का वाजार उठ गया। कलकत्ते के उत्तर में काशीपुर में रानी कात्यायनी के जामाता गोपालवावू का एक उद्यान-भवन था। वहीं श्रीरामकृष्ण देव रोग-शय्या पर पड़े थे। नागमहाशय जान गए—अव लीला-संवरण में अधिक विलम्व नहीं है। इस समय वे पूर्ववत् श्रीरामकृष्ण के पास सदैव जा नहीं सकते थे; कहते, "श्रीरामकृष्ण के शारीरिक कष्टों को देखना तो दूर रहे, उन कष्टों का स्मरण करते भी कलेजा फटा जाता है। श्रीरामकृष्ण ने जव स्वेच्छा से रोग को अपने शरीर में स्थान दे दिया, तव तो उनकी पीड़ा को किसी प्रकार दूर करना हमारे लिए सम्भव नहीं; ऐसी अवस्था में उनके पास न जाना ही ठीक है, ऐसा सोचकर मैंने उनके पास वारम्वार जाना वन्द कर दिया। केवल कभी-कभी जाकर उनके दर्शन कर आता था।" जव श्रीरामकृष्ण की देह में दिन-रात अन्तर्दाह हो रहा था, ऐसे समय एक दिन नागमहाशय को देखकर उन्होंने कहा, "जरा आगे सरक आओ और मेरी देह से सटकर वैठो। तुम्हारे ठंडे शरीर के स्पर्श से मेरी देह की जलन कुछ कम हो जायगी।" और ऐसा कहकर श्रीरामकृष्ण वहुत समय तक नागमहाशय का आलिंगन किए हुए वैठे रहे।

सुरेश क्वेटा से लौटकर जव श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने गए थे, तव श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा था, "तुम्हारा वह डाक्टर कहाँ है? सुना है, वह अच्छी डाक्टरी जानता है। उससे जरा

एक वार आने के लिए कहना तो।" सुरेश ने घर लौटने पर नागमहाशय को यह वात वताई। नागमहाशय जव काशीपुर गए, तो श्रीरामकृष्ण ने कहा, "तुम आ गए? चलो अच्छा हुआ। देखो न, सव डाक्टर, वैद्य लोग तो हार मान गए! तुम्हें कुछ झाड़-फूँक आती है? यदि आती हो, तो जरा कर देखो न, जिससे कुछ आराम मिले!" नागमहाशय माथा नवाए हुए कुछ सोचते रहे और फिर निश्चय कर लिया कि मैं श्रीरामकृष्ण के उस सांघातिक रोग को मानसिक शक्ति की सहायता से अपने ऊपर ले लूँगा। वे अपूर्व उत्साह के साथ वोले, "हाँ, हाँ, आती है, आपकी कृपा से मुझे सव कुछ आता है, अभी व्याधि दूर किए देता हूँ।" और ऐसा कहकर वे श्रीरामकृष्ण की ओर वढ़े। भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने उनका अभिप्राय भाँप लिया और अपने पास से उन्हें दूर ठेलते हुए कहा, "हाँ, तुम कर सकते हो, तुम रोग दूर कर दे सकते हो!"

श्रीरामकृष्ण देव के अन्तर्धान होने के पांच-सात दिन पहले नागमहाशय और एक वार उन्हें देखने गए। कमरे में प्रवेश करते ही उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव को कहते सुना, "इस समय क्या कहीं आँवला मिल सकता है? मुँह फीका पड़ गया है, आँवला चवाने से शायद कुछ अच्छा लगे!" उपस्थित भक्तों में से एक ने कहा, "महाराज, यह आँवले का समय नहीं है, आँवला आजकल कहाँ मिलेगा?" नागमहाशय सोचने लगे, "श्रीरामकृष्ण देव के मुख से जव आँवले की वात निकली है, तव अवश्य कहीं-न-कहीं वह मिलेगा ही।" वे जानते थे कि श्रीरामकृष्ण देव की जव जो इच्छा होती थी, वह किसी भी प्रकार हो, पूरी हो ही जाती थी। एक समय श्रीरामकृष्ण को

सन्तरा खाने की इच्छा हुई थी। वे सन्तरे की वात स्वामी अद्‌भुतानन्द से कह ही रहे थे कि कुछ समय वाद नागमहाशय हाथ में सन्तरे लिए हुए दक्षिणेश्वर आ पहुँचे। श्रीरामकृष्ण ने वड़े प्रेम से सन्तरा खाया था। इस घटना को सोचते-सोचते, नागमहाशय किसी से कुछ न कह आँवले की खोज में चल पड़े। दो-अढ़ाई दिन वीत गए, नागमहाशय की कोई खवर नहीं। इस वीच वे वगीचे-वगीचे जा-जा आँवले की खोज में घूम रहे थे। अन्त में तीसरे दिन एक वगीचे में उन्हें एक आँवला मिल गया। वे आँवला लेकर श्रीरामकृष्ण के पास उपस्थित हुए। आँवला पाकर श्रीरामकृष्ण वालक के समान आनन्द प्रकट करते हुए वोले, "अहा! इतना सुन्दर आँवला इस असमय में तुम्हें कहाँ से मिला?" तत्पश्चात् उन्होंने स्वामी रामकृष्णानन्द से नागमहाशय के लिए भोजन का प्रवन्ध करने के लिए कहा। नागमहाशय श्रीरामकृष्ण देव के समीप वैठकर उन्हें पंखा झलने लगे। भोजन का प्रवन्ध हो जाने पर रामकृष्णानन्दजी ने संवाद भेजा, पर नागमहाशय नहीं उठे। अन्त में श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें नीचे जाकर भोजन कर आने का आदेश दिया। नागमहाशय नीचे आए और आसन पर वैठे, पर उन्होंने परोसी हुई चीजों को स्पर्श तक न किया। सभी उनसे भोजन आरम्भ करने के लिए अनुरोध करने लगे, पर वे चुप ही वैठे रहे। उस दिन उनका एकादशी-व्रत था; उन्होंने मन में निश्चय किया था कि श्रीरामकृष्ण यदि कृपा करके अपना प्रसाद देंगे, तभी व्रत तोड़ूँगा, अन्यथा नहीं। पर उन्होंने अपने मन की यह बात किसी से नहीं कही। वे जव किसी प्रकार भोजन करने को राजी न हुए, तव रामकृष्णानन्दजी ने ऊपर जा श्रीरामकृष्ण

देव से यह बात कही। श्रीरामकृष्ण ने कहा, "अच्छा, वह परोसी हुई पत्तल यहाँ ले आ।" वैसा ही किया गया। रामकृष्णानन्दजी परोसी चीजों समेत पत्तल को ऊपर उठा ले गए और श्रीरामकृष्ण के सम्मुख रख दिया। सभी पदार्थों को जिह्वा से स्पर्श कर श्रीरामकृष्ण देव बोले, "ले, अब ले जा, अब वह खायगा।" रामकृष्णानन्दजी पत्तल को पुनः नीचे ले आए और नागमहाशय के सामने रख दिया। बस त्योंही नागमहाशय 'प्रसाद! प्रसाद! महाप्रसाद!!' कहते हुए भूमिष्ठ हो बारम्बार प्रणाम करने लगे और तत्पश्चात् खाना आरम्भ किया। उन्होंने पत्तल तक को बाकी न छोड़ा, वे उसे भी उदरस्थ कर गए! प्रसाद के रूप में पाने पर नागमहाशय कोई भी चीज छोड़ते न थे। रामकृष्णानन्द कहते, "अहा, उस दिन हमने नागमहाशय का कैसा सुन्दर भाव देखा!" इस घटना के बाद श्रीरामकृष्ण देव के भक्तगण नागमहाशय को कभी भी पत्तल पर प्रसाद नहीं देते थे; यदि कभी दे ही देते, तो इस बात के लिए बड़े सतर्क रहते कि कहीं वे पत्तल भी न खा जायें, और उनका खाना होते ही पत्तल खींच लेते। जिस फल में गुठली रहती थी, उसकी गुठली निकालकर उन्हें खाने दिया जाता था। सन् १८८६ ई. के श्रावण मास की अमावस्या को रविवार के दिन भगवान श्रीरामकृष्ण ने लीला संवरण कर ली। समाचार पाकर नागमहाशय श्मशान में गए और वहाँ से आने के पश्चात् पानी तक मुँह में बिना डाले वैसे ही पड़े रहे।

श्रीरामकृष्ण देव के ब्रह्मलीन होने पर स्वामी विवेकानन्द ही सब भक्तों के आश्रय बने। वे ही सब भक्तों की पूछ-ताछ और देख-भाल करते। उन्होंने सुना कि श्रीरामकृष्ण देव के

ब्रह्मलीन होने के समय से नागमहाशय एक रजाई ओढ़कर विना कुछ खाए-पिए पड़े हुए हैं, शौचादि तक के लिए नहीं उठते। तब वे स्वामी अखण्डानन्द और स्वामी तुरीयानन्द को साथ ले नागमहाशय के निवासस्थान पर गए। वहुत पुकारने पर तव कहीं नागमहाशय उठे। स्वामीजी ने कहा, "आज हम लोग आपके यहाँ भिक्षा के लिए आए हैं।" नागमहाशय उसी समय वाजार जाकर अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ खरीद लाए। तव तक ये तीनों अतिथि स्नान आदि से निवृत्त होकर नागमहाशय के टूटे तख्त पर श्रीरामकृष्ण सम्बन्धी वातें करते वैठे थे। नागमहाशय ने तीन पत्तलें परोसकर रखीं। स्वामीजी ने एक और पत्तल परोसने के लिए कहा और उस पत्तल पर वैठने के लिए नागमहाशय से वहुत अनुरोध किया, पर नागमहाशय राजी नहीं हुए। तव स्वामीजी वोले, "अच्छा, ये वाद में वैठेंगे।" भोजन के वाद विश्राम करने के पूर्व स्वामीजी ने नागमहाशय से पुनः अनुरोध किया। तव नागमहाशय क्षुव्ध स्वर से कहने लगे, "हाय, हाय, आज भी इस देह पर भगवान की कृपा नहीं हुई और मैं इसे आहार दूँ! छिः, यह मुझसे न हो सकेगा!" स्वामीजी ने कहा, "आपको खाना ही होगा, नहीं तो हम लोग यहाँ से टलने के नहीं।" वहुत समझाने के वाद तव कहीं उस दिन उन्होंने भोजन किया। श्रीरामकृष्ण देव के ब्रह्मलीन होने पर वागवाजार-निवासी प्रसिद्ध भक्त वलराम वसु ने नागमहाशय से पुरी धाम में रहने के लिए विशेष आग्रह किया। पालवावुओं ने भी उनसे नवद्वीप में रहने के लिए वहुत अनुरोध किया था। दोनों ही उनका सारा खर्च उठाने को तैयार थे। पर नागमहाशय ने कहा, "श्रीरामकृष्ण देव मुझे घर में ही रहने के लिए कह गए

हैं; उनकी आज्ञा का तिलमात्र भी उल्लंघन करना मेरे लिए असम्भव है।" इस प्रकार किसी का कहना न मानकर, श्रीरामकृष्ण देव की आज्ञा सिर पर धारण कर नागमहाशय अपने ग्राम चले गए और वहीं रहने लगे।

इसी समय भाग्यकुल के कुण्डबाबुओं ने नागमहाशय को ५०) मासिक वेतन पर अपना गृह-वैद्य रखना चाहा, पर नागमहाशय ने उनकी बात स्वीकार नहीं की।

पंचम अध्याय

देवभोग में वास

देवभोग आकर नागमहाशय तन-मन से अपने पिता की सेवा में लग गए। दीनदयाल अब अशक्त हो पड़े थे। कई बार नागमहाशय को उनका हाथ पकड़कर शौच और स्नान आदि के लिए ले जाना पड़ता था। नागमहाशय उनकी शय्या सुन्दर ढंग से बिछा देते। उनकी जब जो खाने की इच्छा होती, उसे वे हर तरह से प्रयत्न करके पूरी कर देते। दीनदयाल ने किसी समय उलाहना देते हुए कहा था, "दुर्गाचरण तो घर ही बैठा रह गया। कितने लोग दुर्गा-पूजा आदि करते हैं, यदि हममें शक्ति होती, तो हम भी माता की पूजा-अर्चना करते। पर हमारा वह सौभाग्य कहाँ!" नागमहाशय को यह बात मालूम हो गई। बस उन्होंने उसी वर्ष से पिता के सन्तोष के लिए दुर्गा-पूजा, काली-पूजा, जगद्धात्री-पूजा, सरस्वती-पूजा आदि करना आरम्भ कर दिया। वे दीनदयाल को घड़ी-भर भी सांसारिक चिन्ता करने का मौका नहीं देते थे, सारे समय उनके पास बैठकर भागवत, पुराण आदि शास्त्र-ग्रन्थों का पाठ करके उन्हें सुनाया करते। पुत्र के इस प्रकार लगातार प्रयत्न से पिता का मन धीरे-धीरे बदलने लगा। शारदीय उत्सव के लिए आवश्यक द्रव्य आदि खरीदने नागमहाशय प्रति वर्ष पूजा के पहले कलकत्ता जाया करते थे। इस बार कलकत्ता जाने पर उन्होंने सुरेश से कहा, "धीरे-धीरे बाबा का मन बदल रहा है। अब वे विषय-चिन्तन नहीं करते, दिन-रात केवल ईश्वर-चिन्तन और ईश्वरीय प्रसंग में ही लगे रहते हैं।"

पूर्व-वंग तन्त्र-प्रधान देश है, वहाँ शुद्धा-भक्ति की अपेक्षा सिद्धि आदि की ही अधिक महिमा है। स्वामी विवेकानन्द ने एक दिन लेखक से कहा था, "अरे, तेरे पूर्व-वंग में तो मैंने केवल वैष्णवों और तान्त्रिकों का ही प्रभुत्व देखा ! उनके समान वामाचारी और सिद्धि के पीछे पड़ा रहनेवाला प्रान्त क्वचित् ही मिले।" श्रीरामकृष्ण देव ने एक समय नागमहाशय से पूछा था, "अच्छा, तुम्हारे उधर के साधु सब कैसे होते हैं ?" नागमहाशय ने कहा, "मैंने तो उधर कोई अच्छा साधु-सन्त नहीं देखा।" वे कहते, "जिस देश में गंगा नहीं है, वहाँ भक्त लोग जन्म लेना नहीं चाहते। वहाँ के लोग भले ही बड़े तार्किक और पण्डित हो जायँ, पर मैया भागीरथी के तीर पर जन्म-ग्रहण किए विना शुद्धा-भक्ति प्राप्त नहीं होती।" नागमहाशय के देवभोग में आकर वास करने के कुछ समय पहले से श्री नटवर गोस्वामी और श्री विजयकृष्ण गोस्वामी पूर्व-वंग में शुद्धा-भक्ति का प्रचार कर रहे थे।

नागमहाशय जानते थे कि विजयकृष्ण श्रीरामकृष्ण देव के भक्त हैं। देवभोग आने पर एक समय उन्हें कार्यवश ढाका जाना पड़ा। वहाँ विजयकृष्ण से उनकी भेंट हुई। विजयकृष्ण नागमहाशय को नहीं पहचानते थे; किन्तु साधना-लब्ध सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा उन्होंने जान लिया था कि दीन-हीन और उन्मत्त के वेश में कोई महापुरुष उन्हें दर्शन देने आए हैं। जब बातचीत के प्रसंग में उन्हें यह ज्ञात हुआ कि नागमहाशय श्रीरामकृष्ण देव के भक्त हैं, तब तो उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। उन्होंने परम आत्मीयता के साथ नागमहाशय का आलिंगन किया और उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा प्रकट करने लगे।

विजयकृष्ण को देखकर नागमहाशय भी आनन्दित हुए थे, पर वे कहते, "श्रीरामकृष्ण को देखने के उपरान्त भी वे (विजयकृष्ण) क्यों अन्यान्य साधुओं के पिछलगू बने रहते हैं, यही एक आश्चर्य की बात है !" विजयकृष्ण बारदी के ब्रह्मचारी के पास आते-जाते रहते थे। यह देख नागमहाशय कहते, "जब विजयकृष्ण-जैसे बड़े-बड़ों का भी मति-भ्रम हो जाता है, तब दूसरों की क्या बात !" गिरीशबाबू ने यह सुनकर कि विजयकृष्ण श्रीरामकृष्णदेव के पास बैठकर आँखें मूँदकर ध्यान करते हैं, कहा था, "अरे, जिन्हें निर्निमेष नेत्रों से देखते रहना चाहिए, उनके सामने आँखें मूँदकर बैठा रहना कैसा !—यह भी कैसा आदमी है !" इस बात का उल्लेख कर नागमहाशय गिरीशबाबू की विद्या-बुद्धि की बड़ी प्रशंसा करते और "जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण" कहते हुए गिरीश के उद्देश्य से प्रणाम करने लगते।

पूर्व-बंग में बारदी के ब्रह्मचारी की विशेष प्रतिष्ठा थी। ब्रह्मचारी के शिष्य ब्रह्मानन्द भारती के आग्रह से नागमहाशय को एक बार बारदी जाना पड़ा था। ब्रह्मानन्द का पूर्व नाम ताराकान्त गंगोपाध्याय था। ताराकान्त वकीली करके प्रति महीने २००-२५० रुपए पाते थे। संकीर्तन, साधु-सेवा और साधन-भजन में उनकी विशेष रुचि थी। आगे चलकर उन्होंने वकीली छोड़ दी और साधन-भजन में मन लगाया। वे सर्वदा नागमहाशय के पास आया करते और कभी-कभी तो दस-पन्द्रह दिन देवभोग में ठहर भी जाते। कुछ समय बाद उन्होंने उक्त ब्रह्मचारी के पास आना-जाना प्रारम्भ किया। वे कभी तो अपने को उस ब्रह्मचारी का शिष्य बतलाते थे और कभी अपने को ब्रह्मचारी के पूर्व-जन्म का गुरु निर्देश करते थे।

वे एक दिन देवभोग आए और नागमहाशय से कहने लगे, "मुझे अपने पूर्व-जन्म का स्मरण हो आया है। मैं अब चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मलोक आदि में आ-जा सकता हूँ। धर्माधर्म सब झूठ है—एकमात्र ज्ञान ही सत्य है।" ताराकान्त के इस प्रकार भाव-परिवर्तन पर नागमहाशय कहते, "यथार्थ गुरु और उप-देशक का आश्रय न मिलने पर बड़े-बड़े साधक भी गलत रास्ते पर चले जाते हैं।" उक्त ब्रह्मचारी को देख आने के लिए ताराकान्त बीच-बीच में नागमहाशय से अनुरोध करते रहते। एक दिन उनके इस प्रकार अत्यन्त आग्रह करने पर नागमहाशय ने जाना स्वीकार कर लिया। साधु-दर्शन करने जा रहे थे, अतः वे नारायणगंज से कुछ फल-मिष्टान्न खरीदकर साथ ले गए। ब्रह्मचारी के समीप जा उन्होंने फल-मिठाई भेंट दी, पर ब्रह्मचारी ने उसे स्पर्श तक न किया! पास ही में एक साँड़ खड़ा था, सारा पदार्थ उसके सामने फेंक दिया। नागमहाशय का शुष्क शरीर, रूखे बाल और दीन-हीन वेश देख ब्रह्मचारी उनका उपहास करते हुए हँसने लगा। नागमहाशय सिर नीचा किए बैठे रहे। उन्हें चुप देख, ब्रह्मचारी और भी उत्तेजित हो श्रीरामकृष्ण के प्रति बहुत बुरा-भला कहने लगा। नागमहाशय अब सहन न कर सके। क्रोध के कारण उनके शरीर से मानो आग-सी निकलने लगी। सहसा उन्होंने देखा, उनके समीप ही एक भीषण आकृतिवाली काले रंग की भैरव-मूर्ति प्रकट हुई और ब्रह्मचारी को कुचल डालने की अनुमति माँगने लगी! नागमहाशय ने किसी प्रकार अपना क्रोध रोका, और "हा प्रभु, हा रामकृष्ण, मैं तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन कर क्यों यहाँ साधु-दर्शन करने आया! क्यों इस प्रकार मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो

गई !" कहते-कहते अपना सिर पीटने लगे। तत्पश्चात् "हा रामकृष्ण, हा रामकृष्ण" कहते हुए वे वहाँ से दौड़ते हुए निकल पड़े। जब ब्रह्मचारी आँखों से ओझल हो गया, तब वे शान्त होकर धीरे-धीरे चलने लगे। घर लौटकर उन्होंने कान पकड़ा, 'अब और कभी किसी साधु के दर्शन करने न जाऊँगा।' कोई यदि साधु-दर्शन के लिए चलने की बात कहता, तो वे गुनगुनाने लगते, "अपने में तुम मगन रहो मन, जाओ नहीं किसी के पास।"

संसार की कोई भी घटना नागमहाशय को विचलित नहीं कर सकती थी, पर गुरु-निन्दा सुनते ही इस शान्त और आनन्दी पुरुष के धीरज का बाँध टूट जाता। एक दिन नारायण-गंज से कोई व्यक्ति नागमहाशय के श्वशुर के घर आया। वहाँ श्रीरामकृष्ण देव का प्रसंग उठने पर वह उनके प्रति कुछ कटु वाक्य कहने लगा। नागमहाशय ने अत्यन्त विनीत भाव से उनसे ऐसा न करने के लिए कहा। पर वे जितनी ही विनय करने लगे, वह व्यक्ति उतना ही कटु शब्दों का प्रयोग करने लगा। फिर भी नागमहाशय ने अपने को संयत करके कहा, "देखिए, इस घर में बैठकर आप आइन्दा श्रीरामकृष्ण देव की इस प्रकार निन्दा न करें।" तो भी वह व्यक्ति चुप नहीं हुआ ! अन्त में नागमहाशय बोले, "देखो, तुम अभी इस घर से बाहर निकल जाओ, अन्यथा आज तुम्हारी खैर नहीं।" पर वह व्यक्ति टस-से-मस न हुआ। प्रत्युत उसका स्वर और भी ऊँचा हो गया ! तब तो नागमहाशय क्रोध के कारण अपने आपे से बाहर हो गए, उनकी आँखों से मानो आग की लपटें निकलने लगीं, वे उस व्यक्ति की पीठ पर तड़ातड़ जूते मारते हुए बोले,

"निकल साला यहाँ से, यहाँ बैठकर श्रीरामकृष्ण की निन्दा करता है !" वह आदमी देवभोग का एक प्रतिष्ठावान और गण्य-मान्य व्यक्ति था। जूते खाकर जाते समय बोल गया, "अच्छा ! अच्छा ! देख लूँगा तेरा कैसा साधूपना है सो ! इसका बदला जल्द ही मिलेगा।" नागमहाशय उसकी बातों पर कान न दे कहने लगे, "हा प्रभु, हा रामकृष्ण, तुम ऐसे नीच लोगों को यहाँ क्यों लाते हो, जो तुम्हारी निन्दा करते हैं ! धिक्कार है इस संसार-आश्रम को !" कुछ समय बाद नागमहाशय शान्त हुए। वह व्यक्ति कुछ दिन बाद नागमहाशय के पास आया और उनसे क्षमा माँगने लगा। नागमहाशय बस त्योंही द्रवित हो गए, उसको आश्वासन देते हुए अपने समीप बिठाया और हुक्का भरकर देने लगे। वह जब घर लौटने लगा, तो हाथ में लालटेन ले वे उसे बहुत दूर तक रास्ता दिखा आए। साधु के हाथ से जूते खाकर उस व्यक्ति की बुद्धि ठिकाने पर आई थी ! गिरीशबाबू ने जब यह घटना सुनी, तो नागमहाशय के कलकत्ता आने पर उनसे पूछा, "आप तो जूता नहीं पहनते, फिर उसे मारने के लिए आपने जूता पाया कहाँ से ?" नागमहाशय बोले, "उसका जूता लेकर ही तो उसे मारा।" तत्पश्चात् 'जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण' कहते हुए वे गिरीश को प्रणाम करने लगे। गिरीश कहते, "नागमहाशय सचमुच ही फणधारी नाग हैं !"

एक दिन मैं (इस ग्रन्थ का लेखक) नागमहाशय के साथ बेलुड़ मठ जा रहा था। भाड़े की नाव थी, नाना प्रकार के स्वभाववाले यात्री बैठे थे; नागमहाशय उठे और एक कोने में सिकुड़कर बैठ गए। नाव जब लालाबाबू के घाट पर आई, तब

वहाँ से मठ दीख पड़ने लगा। उन्होंने मुझे मठ की ओर उँगली दिखाई और उसे प्रणाम करने लगे। उनको इस प्रकार करते देख एक यात्री मठ की वहुतेरी निन्दा करने लगा। उसके साथ दो-तीन लोग और मिल गए। नागमहाशय चुप न रह सके; उस पहले व्यक्ति को दोनों हाथ का अँगूठा दिखाते हुए वोले, "तुम लोग जानते हो वस औरत और पैसा! मठ के वारे में क्या जानते हो? आँखों पर पट्टी वाँधकर वैठे हो! धिक्कार है तुम्हारी रसना को, जिसने व्यर्थ इस प्रकार साधु-निन्दा की!" वह व्यक्ति नागमहाशय की उग्र मूर्ति देख नाववाले को पुकारकर कहने लगा, "अरे, नाव जरा घाट से लगा दे, मैं यहीं उतर जाऊँगा!" जव मैंने यह सारी घटना पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द को वताई, तो वे वोले, "समय पड़ने पर नागमहाशय के समान सिंह हो जाना चाहिए।" फिर वोले, "यह क्या नकली सोना है रे, यह है खरा सोना—असली सोना!"

वारदी के ब्रह्मचारी का एक शिष्य कभी-कभी नागमहाशय के पास आया करता था। वारदी की उक्त घटना के वाद वह शिष्य एक दिन उनके पास आया और कहने लगा, "ब्रह्मचारी ने शाप दिया है कि मुँह से रक्त गिरकर एक वर्ष में ही आपकी मृत्यु हो जायगी।" यह सुन नागमहाशय हँसते हुए वोले, "ऐसे शाप से मेरा एक वाल भी वाँका नहीं होने का!" एक वर्ष के वाद शाप को विफल हुआ देख उस शिष्य ने ब्रह्मचारी का साथ छोड़ दिया और नागमहाशय का अनुगत हो गया। उसने ज्ञान-मार्ग छोड़ भक्ति-पथ का सहारा लिया। इससे उसकी उन्नति शीघ्र होने लगी। नागमहाशय कहते, "वारदी के

ब्रह्मचारी ने संसारी लोगों को वेदान्त-ज्ञान की बातें बताकर उनका मस्तिष्क बिगाड़ दिया है। संसारी लोगों के लिए ज्ञान-मार्ग का उपदेश उचित नहीं।"

नागमहाशय के यहाँ एक दिन एक संन्यासी आया। उसकी त्याग-निष्ठा का परिचय था केवल वस्त्र न पहनने में; विरक्त भाव—बेचारे गृहस्थों के प्रति; और ईश्वरानुराग चाहे रहे या न रहे, पर गाँजा पर उसकी तीव्र आसक्ति थी! गांजे की दम खींचने में उसकी जोड़ का शायद ही दूसरा मिले! वह नंगा चला आ रहा था, पर दूर से नागमहाशय को देख, थोड़ा संकुचित हो कमर में कपड़ा लपेट लिया। फिर नागमहाशय के समीप आ सिद्धियों की बातें करने लगा। नागमहाशय ने कहा, "ये सब बिलकुल हेय हैं — ये शुद्धा-भक्ति की प्राप्ति में बाधक हैं।" संन्यासी नागमहाशय की बात अनसुनी कर बोला, "मैं सात दिन विष्ठा खाकर रह सकता हूँ!"

नागमहाशय—उसमें भला कौनसी बहादुरी है! कुत्ता तो सारा जीवन विष्ठा खाकर रह सकता है!

संन्यासी—मैं जीवन-भर दिगम्बर रहा हूँ!

नागमहाशय—उन्मत्त, पागल, पशु-पक्षी आदि अन्य जीव-जन्तु भी तो सारा जीवन नंगे रहते हैं। उसमें उनकी कौनसी बहादुरी?

संन्यासी—मैं सदा वृक्ष के नीचे निवास करता हूँ।

नागमहाशय—कितने ही जीव-जन्तु वृक्ष के आश्रय में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देते हैं! इसमें प्रशंसा के लायक भला कौनसी बात है?

संन्यासी इसी प्रकार और भी कितनी सिद्धि-सम्बन्धी

बातें करता रहता, यदि नागमहाशय के प्रिय भक्त नटवर ने उसको डंडा न दिखाया होता। सिद्धि के सम्बन्ध में नागमहाशय कहते, "अरे, वह तो पाँच मिनट का काम है, पाँच मिनट बैठने से ही जो सिद्धि चाहो मिल सकती है।"

साधारणतः बस इसी प्रकार के साधु-संन्यासी उस समय पूर्व-बंग में मिलते थे, और वहाँ ऐसे लोगों का मान भी था। नागमहाशय दीन-हीन भाव से रहते थे, उनका वेश मलिन था, वे साधारण लोगों के समान संसार का काम-काज भी करते रहते थे, इसी लिए पहले-पहल लोग यह नहीं पहचान सकते थे कि वे एक उच्च कोटि के साधु-महापुरुष हैं। पर एक बार जिसका उनके साथ वार्तालाप हो जाता, बस वह जान लेता कि ये दीन-हीन गृहस्थ मानव-शरीर में देवता हैं! मेरे एक सम्बन्धी श्री दीनबन्धु मुखोपाध्याय मेरे साथ एक दिन देवभोग गए। वे एक अच्छे गायक थे। नागमहाशय उनसे 'रामप्रसाद-पदावली' सुनकर परम सन्तुष्ट हुए। दीनबन्धु कहते, "ऐसा महापुरुष मैंने जीवन में और कभी नहीं देखा। शास्त्रों में विदुर आदि महात्माओं की बात है; नागमहाशय को देखकर ऐसा लगता है कि वे उन लोगों से किसी भाँति कम नहीं। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि विदुर ही फिर से नागमहाशय के रूप में आए हैं!"

मेरे श्वशुर श्री मदनमोहन बारुड़ी ने लोगों से सुना कि मैं नागमहाशय के सम्पर्क में आकर लिखने-पढ़ने और, विशेषकर, संसार-धर्म में आस्थाहीन होता जा रहा हूँ। यह बात कहाँ तक सच है यह देखने के लिए वे स्वयं एक दिन देवभोग आए। नागमहाशय को देखकर उनकी सारी चिन्ता दूर हो गई। नागमहाशय के सरल, प्रेमपूर्ण व्यवहार और आदर-सत्कार से

विशेष मुग्ध हो मदनबाबू ने कहा था, "मेरा दामाद जब ऐसे महापुरुष के पास आता-जाता है, तब चिन्ता या भय की कोई बात नहीं।"

श्रीरामकृष्ण कहते, "फूल खिलने पर भौंरों को बुलाना नहीं पड़ता।" जो लोग सचमुच सत्संग-प्रेमी थे, जिनमें धर्म के लिए यथार्थ अनुराग था, वे अब एक-एक करके नागमहाशय के दर्शनार्थ आने लगे। क्रमशः दूर-दूर से भी लोग आने लगे। कभी-कभी मुंसिफ, डिप्टी जैसे उच्च अधिकारी भी आ जाते। नागमहाशय ने अपनी पत्नी से कहा, "देखो, श्रीरामकृष्ण देव का अन्तिम आशीर्वाद अब पूर्ण हुआ। जो लोग यहाँ आते हैं, वे सभी सच्चे धर्मानुरागी हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने मुझसे ऐसा ही कहा था। देखो, उनका आदर-सत्कार करना, उससे तुम्हारा कल्याण होगा।"

कोई उच्च अधिकारी आने से नागमहाशय उनका ससम्भ्रम अभिवादन करते; कहते, "महाशक्ति की इच्छा से अँगरेज लोग इस देश के राजा हुए हैं; इनका तिरस्कार करने से माता भगवती असन्तुष्ट हो जायँगी।" वे अँगरेजी राज्य के विशेष पक्षपाती थे। कहते, "महारानी विक्टोरिया ने शक्ति (जगदम्बा) के अंश से जन्म लिया है, उन्हीं के पुण्य से अँगरेजों की इतनी उन्नति हो रही है। इनके शासन में प्रजा सुखी रहेगी।" युद्ध के सम्बन्ध में वे कहते, "रजोगुण के प्रभाव से इस संसार में चिरकाल से मार-काट चली आ रही है। सत्त्व-वृत्ति में स्थित हुए बिना हिंसा-वृत्ति का दमन नहीं होता।"

जो कोई नागमहाशय के दर्शन करने आता, उसे बिना कुछ खिलाए वे छोड़ते ही नहीं थे। जो लोग दो-तीन दिन

रास्ता चलकर आते, उनके लिए वे रहने की सारी व्यवस्था कर देते। जो जितने दिन चाहता, रह जाता। पूजा-मण्डप के सामने दक्षिण की ओर का घर अतिथियों के लिए रख दिया गया था। अतिथि-सत्कार में इस सामान्य परिवार के सभी लोगों का अपूर्व उत्साह था। दीनदयाल कहते, "'वल छल से भी ब्राह्मण खाय, उसके फल से स्वर्ग को जाय।' जो कुछ हो, अतिथि और ब्राह्मण-सन्तान इस दीन-हीन की कुटिया में दो मुट्ठी अन्न पाते हैं—यही मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है!" नागमहाशय कहते, "यह सभी श्रीरामकृष्ण देव की लीला है! वे लीला-शरीर में एक थे, अब वे ही नाना रूपों में मुझ पर कृपा करने आए हैं।" वे सचमुच नारायण-ज्ञान से अतिथियों की सेवा करते।

एक दिन नागमहाशय को उदर-शूल की बीमारी हो गई। पीड़ा के कारण वे बीच-बीच में अचेत हो जाते। उसी दिन दैवात् उनके यहाँ आठ-दस अतिथि आ पहुँचे। इधर घर में चावल न था। वे उसी अवस्था में बाजार चले गए। वे कभी भी सामान ढोने के लिए मजदूर नहीं रखते थे। हाट-बाजार करके बोझा वे स्वयं अपने सिर पर ले आते। उस दिन चावल की गठरी सिर पर लाते-लाते उनकी पीड़ा बढ़ने लगी। चलते-चलते वे रास्ते में गिर पड़े और कहने लगे, "हाय, हाय, प्रभु! तुमने आज यह क्या किया! घर पर नारायण उपस्थित हैं, उनकी सेवा में विलम्ब हो रहा है। धिक्कार है इस हाड़-मांस के पिंजरे को, जिसके कारण आज भगवान की सेवा न हो सकी।" पीड़ा कुछ कम होने पर, गठरी सिर पर ले वे घर आए। उपस्थित अतिथियों को प्रणाम कर कहने लगे, "हाय,

हाय, आपकी सेवा में विलम्ब हो गया। आज मुझसे भयंकर अपराध हो गया।"

एक दिन रात में पाँच-छः हविष्य-भोजी अतिथि आ पहुँचे। इधर घर में चावल नहीं, उधर दुकानें भी बन्द हो चुकी थीं। तब नागमहाशय की पत्नी हाथ में टोकरी ले चावल उधार माँगने गईं। ऐसी बात होने पर हमें बड़ा बुरा लगता, पर नागमहाशय हमें समझाते, "सब श्रीरामकृष्ण देव की इच्छा है—उन्हीं की दया है। मेरी परीक्षा लेते हैं, बस!"

एक दिन बरसात में उनके यहाँ दो अतिथि आ पहुँचे। उस दिन लगातार वृष्टि हो रही थी। नागमहाशय के मकान में चार कमरे थे; उनमें से तीन कमरों में छप्पर से पानी चूता था। केवल एक ही कमरा अच्छा था, उसमें नागमहाशय सोते थे। अतिथियों का भोजन समाप्त हुआ, पर अब उनके सोने की व्यवस्था कहाँ की जाय? नागमहाशय ने अपनी पत्नी से कहा, "आज हम लोगों का परम सौभाग्य है! ये सब साक्षात् नारायण हैं, इनके लिए क्या थोड़ासा कष्ट नहीं सहोगी? आओ, हम लोग एक कोने में बैठकर श्रीरामकृष्ण देव का नाम लेते-लेते रात बिता दें।" अतिथियों को उस कमरे में सुलाकर, उन दोनों ने कोने में बैठकर श्रीरामकृष्ण के नाम-स्मरण में रात बिता दी।

साधारण गृहस्थ का मासिक आय-व्यय जिस तरह निश्चित रहता है, वैसा नागमहाशय का नहीं था। ठीके के कार्य से उन्हें प्रति वर्ष एक-समान आमदनी नहीं होती थी। फिर अतिथियों की संख्या भी निश्चित नहीं थी। इसलिए उन्हें कभी-कभी आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो जाता। जब जिस चीज की आवश्यकता होती, नागमहाशय नारायणगंज आदि स्थानों के

परिचित दुकानदारों से वह उधार ले आते और वर्ष के अन्त में रणजीत के भेजे हुए रुपयों में से जितना बनता, ऋण चुका देते। बाजार में नागमहाशय की जैसी साख थी, वैसी बड़े-बड़े धनी महाजनों के भी भाग्य में नहीं थी। नागमहाशय का एक ही दुकान से सामान लेने का नियम था। वे कहते, "सत्य पर प्रेम रहने से सत्य ही सदैव उसकी रक्षा करता है, भगवान उस पर अवश्य कृपा करते हैं।" वे जिसके पास से वस्तुएँ खरीदते, वह उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखता। वह दूसरे ग्राहकों को जिस मूल्य पर सामान देता, उसी मूल्य पर वह नागमहाशय को अधिक सामान देता। जब नागमहाशय को यह बात मालूम होती, तो वे कहते, "देखो भाई, जितना औरों को देते हो, उतना ही मुझे भी देना, अधिक न देना।" बाजार में यह धारणा हो गई थी कि नागमहाशय का दर्शन अत्यन्त शुभ होता है, जिस दिन उनके हाथ से बोहनी होगी, उस दिन निश्चय ही अधिक बिक्री होगी। ढीमर, ग्वाले सभी अपनी-अपनी बोहनी के लिए उनसे अनुनय-विनय करते। एक दिन कुछ अतिरिक्त दूध की आवश्यकता पड़ने से उन्होंने एक ग्वाले से खरीदा और पास में फुटकर पैसे न रहने के कारण उसके हाथ में एक रुपया दे दिया। नागमहाशय कभी भी बकाया चाहते न थे। अतएव उन्होंने ग्वाले से बाकी पैसे नहीं माँगे, उस ग्वाले ने भी वापस नहीं किए। उसके कुछ दिन बाद फिर से उसी ग्वाले से दूध खरीदकर उन्होंने उसका दाम नकद चुका दिया, पहले के बाकी पैसे के बारे में कुछ न कहा। ग्वाले ने सोचा—यह ठहरा पागल, शायद बाकी पैसे की बात भूल गया है। उसने वह बात नहीं उठाई और उस दिन के दूध का नकद दाम लेकर चलता बना!

मुझे कभी-कभी नागमहाशय के साथ बाजार जाने का अवसर आया है। वे कभी मोल-भाव नहीं करते थे; दुकानदार जितना बताता, उतना दे देते। एक समय की बात है, एक व्यक्ति उनके दर्शन करने आया और बहुत बीमार पड़ गया। उन्होंने उसकी बहुत सेवा-शुश्रूषा की। वह जब स्वस्थ हो उठा, तब उसको घर भेज देने के लिए मैं नागमहाशय के साथ एक नाव भाड़े पर ठीक करने के लिए गया। नाविक ने अनुचित किराया माँगा, इस पर मैं उससे वाद-विवाद करने लगा। नागमहाशय भर्त्सना करते हुए मुझसे बोले, "निरर्थक विवाद करने से क्या लाभ ? ये लोग कभी झूठ नहीं बोलते।" नाविक ने जितना किराया माँगा था, वही ठीक हुआ। रोगी को लाकर मैंने नाव पर चढ़ा दिया। उसके पास पैसा नहीं था, अतः उसका किराया नागमहाशय ने दिया। इस प्रकार बहुत से लोगों का प्रवास-खर्च भी उन्हें वहन करना पड़ता था।

इस तरह मुक्त हस्त से खर्च करने के कारण नागमहाशय ऋणग्रस्त हो गए। उनका ऋण कोई चुका देना चाहता, तो वे राजी नहीं होते थे। पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्दजी ने अमेरिका से लौटने पर नागमहाशय के ऋण की बात सुनी। उन्होंने ऋण चुकता कर देने में सहायता करने का प्रस्ताव किया। इस पर नागमहाशय बोले, "संन्यासी लोग मुझ पर कृपा-दृष्टि रखें, यही बहुत है। जैसा भी हो, पालबाबुओं से प्राप्त धन द्वारा किसी-न-किसी प्रकार मेरा संसार निभ जायगा।" ऋण के सम्बन्ध में हम लोगों को चिन्तित देखकर वे कहते, "यदि न मिले, तो नहीं खायेंगे, उसमें क्या ? पर गृहस्थ का धर्म न छोड़ सकूँगा। उन सब व्यर्थ की बातों पर आप लोग विचार न करें। भगवान श्रीरामकृष्ण की जैसी इच्छा होगी, होगा।"

नागमहाशय कभी नौकर-चाकर नहीं रखते थे। वे जब देवभोग में रहते, तो मकान की मरम्मत के लिए कुली-मजदूर रखने नहीं देते थे। जब वे कार्यवश देवभोग से बाहर चले जाते, उसी बीच उनकी पत्नी जंगल से लकड़ी कटवाकर, छप्पर छवाकर और मकान को ठीक-ठाक करवाकर रखती थीं। एक बार नागमहाशय लम्बे अरसे तक देवभोग से बाहर नहीं गए। उनका पूरा मकान रहने लायक न रह गया, छप्पर से पानी टपकता। मकान को छवाने के लिए उनकी पत्नी ने एक कारीगर रखा। घर में कारीगर के प्रवेश करते ही नागमहाशय 'हाय, हाय' करने लगे; उसको बिठाकर उन्होंने हुक्का भरकर दिया। कुछ समय बाद कारीगर छप्पर पर चढ़कर काम करने लगा। नागमहाशय 'हाय, हाय' करते हुए उससे नीचे उतर आने को कहने लगे—विनय करने लगे, पर कारीगर किसी तरह न उतरा। तब तो नागमहाशय स्थिर न रह सके, हाथों से अपना सिर पीटते हुए बोले, "हा प्रभु, हा रामकृष्ण, तुमने क्यों मुझे इस गृहस्थाश्रम में रहने का आदेश दिया! हाय, मेरे सुख के लिए एक दूसरे को कष्ट उठाना पड़ रहा है—हाय, हाय, यह भी दिन मुझे देखना पड़ा! धिक्कार है इस संसार-आश्रम को!" उनकी इस प्रकार व्याकुलता देख कारीगर नीचे उतर आया। उसके उतरते ही नागमहाशय ने फिर से उसके लिए हुक्का भर दिया और उसे हवा करने लगे। उसकी थकावट दूर होने पर, उसे सारे दिन की मजदूरी देकर विदा कर दिया।

नाव में चढ़ने पर नागमहाशय नाविक को नाव नहीं चलाने देते थे, वरन् स्वयं हाथ में डाँड़ ले नाव खेने लगते।

दूसरे यात्री उनसे ऐसा न करने को अनेक अनुरोध करते, पर वे किसी की न सुनते थे। इसी लिए यथासम्भव उन्हें नाव में जाने का अवसर नहीं दिया जाता था। बरसात में देवभोग पानी से भर जाता, एक घर से दूसरे घर में जाने के लिए भी नाव की आवश्यकता पड़ती। नागमहाशय की उनकी अपनी नाव नहीं थी। अतः उनकी पत्नी पड़ोसियों की सहायता से जलाऊ लकड़ी आदि का प्रबन्ध पहले से ही करके रखती थीं।

नित्य सायंकाल नागमहाशय धूप-दीप देकर श्रीरामकृष्ण देव के चित्र की आरती उतारते। भक्तों के उपस्थित रहने पर संकीर्तन होता। नागमहाशय बहुधा संकीर्तन में भाग नहीं लेते थे, वे आँगन में एक किनारे बैठकर सबको हुक्का भरकर पिलाते। उनकी उपस्थिति से कीर्तन में दुगुना उत्साह आ जाता था। कीर्तन के अन्त में वे केवल 'जय रामकृष्ण' 'जय रामकृष्ण' करते रहते।

और केवल कीर्तन में ही क्यों, नागमहाशय के घर के प्रत्येक कार्य-कलाप में भक्ति-रस उमड़ता रहता। एक समय सरस्वती-पूजा के दिन मैं उनके यहाँ पहुँचा। वे बीच-बीच में मुझसे शास्त्र-व्याख्या सुना करते थे। एक ही श्लोक की भिन्न-भिन्न व्याख्या सुनकर कहते, "यह भी ठीक है और यह भी ठीक है! जो जैसा अधिकारी है, उसके लिए शास्त्र की तदनुरूप व्याख्या की गई है—प्रत्येक के अधिकार के अनुसार शास्त्र की व्याख्या की गई है। इसमें व्याख्याकारों का कोई दोष नहीं।" श्रीरामकृष्ण देव की बहुरूपियावाली कथा का उल्लेख करते हुए कहते, "ईश्वर के अनन्त रूप हैं। जिसने उन्हें जैसा समझा, बस वैसा वर्णन कर गया। उनका असल स्वरूप कैसा

है; कोई भी नहीं बता सकता।"* तत्पश्चात् मण्डप की देवी-मूर्ति को दिखाकर बोले, "यह सब भी सत्य है। इन देवी-देवताओं की साधना करके कितने लोग मुक्त हो गए हैं,"—और ऐसा कह वे देवी को बारम्बार प्रणाम करने लगे। नाना प्रकार के द्रव्यों से मण्डप पूर्ण है, पुरोहित पूजा कर रहे हैं। नागमहाशय पुनः देवी-मूर्ति को दिखाकर बोले, "माता साक्षात् विद्यारूपिणी हैं! इनकी कृपा न हुई, तो क्या कोई अविद्या को पार कर सकता है? जगदम्बा ने मुझे जन्म से ही मूर्ख रखा है—इस क्षुद्र वंश में मुझे जन्म दिया है, हमारा शास्त्रों में अधिकार नहीं, आप शास्त्रीय बातों की व्याख्या सुनाकर मुझ पर कृपा करें!" देवी-देवता के प्रति उनकी इस प्रकार दृढ़ भक्ति देखकर मुझे उस समय ऐसा लगा कि नागमहाशय शायद देवता-सिद्ध हैं, ब्रह्मज्ञ नहीं। मैं इसी प्रकार सोच रहा था कि इस बीच वे वहाँ से चल दिए। उन्हें खोजते-खोजते मैंने देखा कि वे रसोई-घर के पीछे आम-वृक्ष के नीचे खड़े हैं—पूर्ण भावावेश में हैं। वे बोले, "मेरी माता क्या इस मिट्टी के पुतले में ही आबद्ध है? अरे, वह तो अनन्त सच्चिदानन्दमयी है; मेरी माता महाविद्यास्वरूपिणी है!" और ऐसा कहते-कहते वे गम्भीर समाधि में मग्न हो गए। लगभग आध घण्टे बाद उनकी समाधि टूटी। बाद में जब मैंने उनकी पत्नी को यह घटना बतलाई, तो उन्होंने कहा, "बाबा, तुमने तो आज ऐसा पहली ही बार देखा। कभी-कभी तो दो-तीन पहर तक उनकी चेतना नहीं लौटती। कभी-कभी ऐसा लगता है कि अब शायद उन्होंने देह छोड़ दी!"

---

* इदमित्थं कहि जाय न सोई। —तुलसीदास।

कभी-कभी बहुत से लोगों को आए देखकर नागमहाशय कहते, "माँ, यह क्या हुआ!" और ऐसा कह वे उसी समय चुपके-चुपके कलकत्ता चल देते। ऐसे प्रसंगों को छोड़, जब कभी श्रीरामकृष्ण देव के भक्तों को देखने के लिए उनका मन व्याकुल हो उठता, तो वे तुरन्त कलकत्ते के लिए रवाना हो जाते। इसके अतिरिक्त वे प्रति वर्ष दुर्गा-पूजा के पहले पूजा का सामान खरीदने कलकत्ता जाया करते।

एक समय नवद्वीप से दो साधु ईश्वर-प्रेरित हो नागमहाशय के दर्शन करने देवभोग आए। पर उस समय नागमहाशय घर पर नहीं थे। अतः वे लोग तीन दिन उनके लिए रुककर नवद्वीप लौट गए। यह घटना उनकी पत्नी के मुख से ज्ञात हुई है।

एक बार स्वामी तुरीयानन्दजी, स्वामी ज्ञानानन्द को साथ ले नागमहाशय से मिलने देवभोग आए। बरसात का समय था। मैदान, रास्ता आदि सब कुछ जलमग्न हो, देवभोग एक अखण्ड जलराशि-सा दिखाई देता था। वे दोनों स्वामीजी नाव के सहारे बिलकुल नागमहाशय के मकान के अन्दर तक आ गए। उन्हें देखते ही नागमहाशय 'जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण' कहते हुए पानी में कूद पड़े और बेसुध हो गए। उन दोनों ने झटपट नागमहाशय को पानी से बाहर निकाला और घर में ले गए।

स्वामी विवेकानन्दजी जब अमेरिका से लौट आए, तब एक समय उनकी इच्छा हुई कि देवभोग जायें और वहां की खुली हवा एवं ग्राम्य-जीवन की सुख-स्वच्छन्दता का आनन्द लें —वहां की लोक-प्रथा के अनुसार आचार-व्यवहार करें। यह जानकर नागमहाशय ने स्वामीजी के लिए सारा बन्दोबस्त कर

रखा, पर नागमहाशय के जीवित रहते देवभोग स्वामीजी के चरण-स्पर्श से धन्य न हो सका।

षष्ठ अध्याय

गृहस्थाश्रम और गुरुस्थान

कलकत्ता आने पर नागमहाशय सबसे पहले कालीघाट जाकर कालीमाई का दर्शन करते और फिर अपने कुमारटोली के निवासस्थान पर अपनी कपड़ों की गठरी रखकर उसी पाँव गिरीशबाबू के यहाँ चले जाते; कहते, "गिरीशबाबू के समीप पांच मिनट बैठने से ही जीव का भव-रोग दूर हो जाता है।" फिर कहते, "गिरीशबाबू की बुद्धि इतनी पैनी है कि वे देखते ही लोगों के अन्दर की बात जान लेते हैं। इस बुद्धि के बल से ही गिरीशबाबू ने सबसे पहले श्रीरामकृष्ण देव को अवतार के रूप में पहचाना था।" गिरीश का नाम निकलते ही नागमहाशय श्रद्धापूर्वक गिरीश के उद्देश्य से प्रणाम करते। श्रीरामकृष्ण के भक्तों में वे गिरीश की गणना बहुत उच्चश्रेणी में करते थे।

एक समय जब नागमहाशय पूजा के पूर्व कलकत्ता आए, तो मैं भी उनके साथ गिरीशबाबू के यहाँ गया। उन्हें देखते ही गिरीशबाबू झटपट ऊपर से नीचे उतर आए और परम आदर के साथ हम लोगों को ऊपर ले गए। नागमहाशय ने बिस्तर पर बैठना छोड़ दिया था। अतः वे जमीन पर बैठे। इस पर उपस्थित लोग उनसे बारम्बार बिस्तर पर बैठने का अनुरोध करने लगे। तब गिरीशबाबू ने कहा, "आप लोग उनसे अधिक आग्रह न करें। उन्हें जिसमें सुख हो वही करने दीजिए।" नागमहाशय के आसन ग्रहण करने पर गिरीशबाबू ने उनसे श्रीरामकृष्ण देव की कुछ बातें बतलाने के लिए कहा।

नागमहाशय—मैं ठहरा मूर्ख और दुराचारी, मैंने उन्हें कहाँ पहचाना ? आप मुझ पर कृपा कीजिए, जिससे श्रीरामकृष्ण देव के चरणकमलों में मेरी मति हो।

नागमहाशय की दीनता देखकर उपस्थित सभी लोग स्तब्ध हो गए और उनकी ओर देखने लगे। गिरीश ने कहा, "ऐसा न होता, तो क्या मैं यों ही श्रीरामकृष्ण को भगवान मान लेता ? जिनकी कृपा से मनुष्य की ऐसी अवस्था हो सकती है, उन्हें अवतार न कहें, तो क्या कहें !" श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में अनेक बातें करने के पश्चात् हम लोगों ने विदा ली।

एक रविवार को सुरेश बाबू को और मुझे साथ ले नागमहाशय आलमबाजार मठ गए। उस दिन वहाँ स्वामी तुरीयानन्द, निर्मलानन्द, निरंजनानन्द, प्रेमानन्द, त्रिगुणातीतानन्द आदि अनेक संन्यासी उपस्थित थे। नागमहाशय सबों को साष्टांग प्रणाम करने लगे। उनके आगमन से मठ में आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। हम लोग जिस समय मठ में पहुँचे, उस समय स्वामी रामकृष्णानन्दजी आरती कर रहे थे। सन्ध्या-आरती के समय नागमहाशय ने घंटा बजाया; तत्पश्चात् हम लोग प्रसाद पाने बैठे। काशीपुर में जब से नागमहाशय ने प्रसाद के साथ पत्तल भी उदरस्थ कर ली थी, तब से उन्हें पत्तल में प्रसाद नहीं दिया जाता था। उनके लिए थाली में परोसा गया। प्रसाद ग्रहण करने के बाद वे किसी की बात न मानते हुए थाली को माँजकर ले आए। उस दिन हम लोगों ने मठ में ही रात बिताई। बड़ी गरमी थी, मैं और सुरेशबाबू छत पर जाकर सोए, और नागमहाशय ने सारी रात बैठकर ध्यान में बिता दी। दूसरे दिन सबेरे हम लोगों ने मठ से विदा

ली। मठ में जाने का मेरा यह प्रथम अवसर था। संन्यासियों ने मुझसे बीच-बीच में वहाँ आते रहने के लिए कहा।

नागमहाशय बहुत समय से दक्षिणेश्वर नहीं गए थे, अतः एक दिन सुरेश को और मुझे साथ ले वहाँ गए। श्रीरामकृष्ण देव का अन्तिम लीलास्थल काशीपुर का उद्यान-भवन रास्ते पर ही पड़ता था, सुरेश मुझे संकेत द्वारा वह स्थान दिखाने लगे। काशीपुर का नाम सुनते ही नागमहाशय को मार्मिक पीड़ा होती थी, वे सिर से पैर तक सिहर उठते थे। उन्होंने उस उद्यान-भवन की ओर ताका तक नहीं, पर तो भी उनका मुँह सफेद पड़ गया। गले की पीड़ा से श्रीरामकृष्ण देव के देहान्त की बात उठाने पर नागमहाशय एकदम बोल उठे, "लीला! लीला! वह प्रभु की लीला थी! जीवों के उद्धार की कामना से ही उन्होंने लीला में वह रोग धारण किया था।" इसके बाद नागमहाशय जीते-जी और कभी उस उद्यान के मार्ग से नहीं निकले।

हम लोग दक्षिणेश्वर पहुँचे। प्रवेश-द्वार पर पहुँचते ही नागमहाशय ने साष्टांग प्रणाम किया। दक्षिणेश्वर आने का यह मेरा पहला ही अवसर था। सुरेश मुझे श्रीरामकृष्ण देव के साधना-स्थल बेल-तला, पंचवटी आदि एक-एक करके दिखाने लगे। नागमहाशय यंत्रवत् हम लोगों के साथ-साथ घूम रहे थे, पर उनका मन कहीं और था। अन्त में हम लोग श्रीरामकृष्ण देव के कमरे की ओर आए। कमरे के पास आते-न-आते नागमहाशय "हा प्रभु, हा रामकृष्ण, यहाँ मैं क्या देखने आया!" कहते-कहते पछाड़ खाकर गिर पड़े। मैंने उन्हें उठाया, पर किसी भी प्रकार उन्हें श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में ले जाने के लिए

राजी न कर सका। वे बोले, "अब भीतर जाकर क्या देखना है ? इस जन्म का देखना-सुनना सब समाप्त हो चुका।" जीते-जी वे और कभी उस कमरे में नहीं गए। जब दक्षिणेश्वर जाते, तो दूर से ही उस कमरे को प्रणाम करके चले आते। उस दिन श्रीरामकृष्ण देव के भांजे हृदय मुखोपाध्याय भी दक्षिणेश्वर आए थे। उनके साथ कपड़े का एक गट्ठर था। उनका चेहरा अत्यन्त मलिन हो गया था। नागमहाशय ने बतलाया, "हृदय आजकल कपड़े की फेरी लगाकर रोजी कमाते हैं।" उनके साथ नागमहाशय का परिचय था, दोनों श्रीरामकृष्ण देव की बातें करने लगे। श्रीरामकृष्ण के कमरे के सामने बैठकर हृदय ने श्यामा विषयक तीन-चार गीत गाए। नागमहाशय बोले, "श्रीरामकृष्ण देव ये गीत गाया करते थे।" बहुतसी बातें होने के बाद हृदय कहने लगे, "अहा, तुम लोग उनकी कृपा से कैसे बन गए, पर मुझे आज भी पेट पालने के लिए दर-दर घूमकर कपड़ा बेचना पड़ता है! मामा ने मुझ पर कृपा नहीं की," और ऐसा कहकर वे छोटे बच्चे के समान रोने लगे। दक्षिणेश्वर से लौटते समय हम लोग आलमबाजार मठ में गए और वहाँ श्रीरामकृष्ण देव का सायंकालीन प्रसाद पाया। स्वामी रामकृष्णानन्दजी श्रीरामकृष्ण देव की बातें करते-करते हमारे साथ काफ़ी दूर आ गए। हम लोगों ने उनसे विदा ली और गिरीशबाबू के मकान पर गए। वहाँ से नागमहाशय अपने निवासस्थान पर लौट गए।

श्रीरामकृष्ण देव की लीला-सहधर्मिणी, श्रीरामकृष्ण-भक्तों की जननीस्वरूप श्रीमाताजी उस समय बेलुड़ ग्राम में नीलाम्बर-बाबू के गंगातीरवाले मकान में निवास कर रही थीं। एक

रविवार को नागमहाशय ने मुझे साथ ले उनके दर्शन करने जाने का निश्चय किया। जब मैं नागमहाशय के कुमारटोलीवाले निवासस्थान पर पहुँचा, तो देखता हूँ कि नागमहाशय श्रीमाताजी के लिए कुछ उत्तम सन्देश (मिठाई) और एक चौड़े लाल किनार की साड़ी खरीदकर जाने के लिए तैयार होकर बैठे हैं और बीच-बीच में छोटे बच्चे के समान 'माँ' 'माँ' कर रहे हैं। हम लोग आहिरीटोला जाकर एक भाड़े की नाव पर चढ़े और थोड़े समय में ही बेलुड़ आ पहुँचे। घाट पर पहुँचते ही नागमहाशय भावावेश में केले के पत्ते की तरह काँपने लगे। "जय माँ! जय माँ!" कहते-कहते उनकी देह अवसन्न होने लगी। स्वामी प्रेमानन्दजी ने दूर से ही नागमहाशय को आते देख लिया था और उन्होंने माताजी को यह खबर दे रखी थी। हम लोग ज्योंही घाट पर उतरे, त्योंही वे नागमहाशय का हाथ पकड़कर माताजी के पास ले गए। लगभग आध घण्टे बाद वे लोग माताजी के पास से बाहर आए। तब भी नागमहाशय भाव में झूम रहे थे, कह रहे थे, "पिता से माता की ममता अधिक होती है, माता का प्रेम बड़ा है!" स्वामी प्रेमानन्द बोले, "अहा! आज माताजी ने नागमहाशय पर कितनी कृपा की! नागमहाशय के लाए हुए सन्देश उन्होंने अपने हाथ में लेकर खाए और स्वयं अपने हाथ से नागमहाशय को प्रसाद दिया।" कुछ समय बाद हम लोगों ने स्वामी प्रेमानन्दजी से विदा ली। उस दिन श्रीमाताजी के दर्शन करना मेरे भाग्य में नहीं था।

देवभोग लौटने के छः-सात दिन पूर्व नागमहाशय और एक बार मुझे आलमबाजार मठ ले गए थे। उस दिन लगभग ग्यारह बजे मैं उनके निवासस्थान पर पहुँचा। उस समय

उनका भोजन नहीं हुआ था। मुझे देखते ही वे मेरे साथ घर से निकल पड़े, उस दिन उनका भोजन फिर नहीं हुआ। श्रीरामकृष्ण देव को भोग लगाने के लिए रास्ते में फल-मिठाई आदि खरीद ली गई। लगभग डेढ़ बजे हम लोग मठ में पहुँचे। उस समय वहाँ के संन्यासीगण भोजन के उपरान्त विश्राम कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण देव की सेज-आरती हो चुकी थी। जब वहाँ यह मालूम पड़ा कि नागमहाशय का भोजन नहीं हुआ है, तो स्वामी रामकृष्णानन्द और प्रेमानन्द झटपट उठे और उनके लिए लूची* तैयार करने में लग गए। श्रीरामकृष्ण देव को शयन से उठाकर भोग लगाया गया। नागमहाशय ने बहुतेरा कहा कि 'ऐसा न करें', पर उनकी बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। उनको प्रसाद देने पर वे 'जय रामकृष्ण' कहकर नृत्य करने लगे। हम लोगों ने प्रसाद पाया। स्वामी रामकृष्णानन्दजी श्रीरामकृष्ण देव की पूजा-परिपाटी में तिल मात्र भी व्यतिक्रम नहीं होने देते थे। किसी राजाधिराज के आने पर भी जिस नियम का व्यतिक्रम होना सर्वथा असम्भव था, आज उसी अलंघनीय नियम ——श्रीरामकृष्ण देव को बीच में ही शयन से न उठाने के नियम—— का उल्लंघन नागमहाशय के लिए रामकृष्णानन्दजी ने स्वयं किया !

श्रीरामकृष्ण-भक्त-जननी श्रीमाताजी ने नागमहाशय को एक वस्त्र दिया था। नित्य उसी वस्त्र को सिर में लपेटकर नागमहाशय पूजा का बाजार किया करते। किसी भक्त के अनुरोध से जगदम्बा की आरती के लिए चाँदी की मूठवाला एक श्वेत-चँवर खरीदा गया। प्रति वर्ष पालबाबुओं से नागमहाशय को ठीके के रोजगार में जितना कुछ मिलता, उसी से वे वार्षिक

* एक प्रकार की बंगाली पूरी।

पूजा का बाजार करते थे। बाजार करने के बाद वे रेलगाड़ी से गाँव जाने को निकले। एक भक्त उन्हें पहुँचाने स्टेशन आया। उनका सामान डब्बे में रखते समय उसने अपना छाता भी वहीं रख दिया, पर जाते समय जल्दी-जल्दी में वह अपने छाते की बात भूल गया। यह देख नागमहाशय ने उस छाते को सावधानी से रख लेना चाहा, पर एक दूसरा यात्री उसे अपना बताने लगा। नागमहाशय ने उसे बहुत समझाया, पर कोई फल न हुआ। मार्ग में उस यात्री को नींद आ गई। जिस स्टेशन पर उसे उतरना था, वह पार हो गया, पर तो भी उसकी नींद न टूटी। तीन-चार स्टेशन और आगे जाकर उसकी नींद खुली। उसके पास अतिरिक्त भाड़ा देने के लिए पैसे नहीं थे, अतः स्टेशन मास्टर ने उसे रोक रखा। इस घटना का उल्लेख करके नागमहाशय ने कहा था, "बुरे कर्म का फल तुरन्त मिलता है, तो भी मनुष्य नहीं चेतता।"

उसी गाड़ी में एक अन्य व्यक्ति एक वेश्या को साथ ले जा रहा था। नागमहाशय कहते, "उन पर आँखें पड़ते ही मैंने देखा कि एक पिशाचिनी उस व्यक्ति का गला दबोचकर खून पी रही है। देखते-ही-देखते उस व्यक्ति का सारा मांस समाप्त हो गया और हड्डी का पिंजरा मात्र शेष रह गया। यह देख मैं चौंककर 'माँ माँ' चिल्ला उठा। मैंने आँखें मलकर देखा कि कहीं वह आँखों का भ्रम तो नहीं है, पर नहीं, वह सब मैंने बिलकुल सही-सही इन्हीं आँखों से देखा था!"

इस वर्ष पूजा के पश्चात् शीघ्र ही नागमहाशय कलकत्ता आ गए।

इस बार भी वे मुझे और सुरेश को लेकर बीच-बीच में

आलमवाजार मठ, दक्षिणेश्वर और गिरीशवावू के यहाँ जाया करते। उनके कुमारटोली वाले निवासस्थान पर वहुत से लोग उनके दर्शनार्थ आया करते। यदि कोई उनके प्रति किसी प्रकार से सम्मान प्रदर्शित करता, तो वे विचलित हो कहते, "इस हड्डी और मांस के पिंजरे में भला क्या रखा है, जो आप इसे देखने आते हैं? आप श्रीरामकृष्ण देव की वातें कहकर मेरे मन-प्राण शीतल कीजिए।" गिरीशवावू कभी-कभी नागमहाशय को भोजन के लिए वुलाते। वे गिरीशवावू का अन्न बड़े प्रेम से ग्रहण करते; कहते, "गिरीशवावू का दिया हुआ अन्न ग्रहण करने से मेरा शरीर और मन शुद्ध हो जायगा।" श्रीरामकृष्ण देव के किसी भी भक्त के यहाँ वे अन्न ग्रहण करने में हिचकिचाते नहीं थे; श्रीरामकृष्ण-भक्तों के सम्वन्ध में वे किसी प्रकार का जाति-विचार आदि नहीं करते थे, कहते, "यह भक्त-समागम पुरुषोत्तम-क्षेत्र के अन्नसत्र के समान है।"

एक दिन गिरीशवावू के यहाँ नागमहाशय का निमन्त्रण था। उस दिन भगवान श्रीरामकृष्ण को खिचड़ी का भोग लगाया गया था। नागमहाशय प्रसाद पाने वैठे। उन्हें एक पत्तल पर खिचड़ी और दूसरी पर नाना प्रकार के पकवान परोसे गए। पकवान की पत्तल को देख वे हाथ जोड़कर कहने लगे, "इससे जीभ को चाट पड़ जायगी," और उसमें से थोड़ा-थोड़ा खिचड़ी की पत्तल पर ले उसे अलग सरका दिया। गिरीशवावू के वैठने पर उन्होंने भोजन आरम्भ किया। नमक देने पर उन्होंने नहीं लिया, कहा, "इससे जीभ को स्वाद की लत लग जायगी।"

यह सोचकर कि गरम कपड़ों के अभाव में नागमहाशय को शीतकाल में वहुत कष्ट होगा, गिरीशवावू ने श्री देवेन्द्रनाथ

मजुमदार के हाथ उनके लिए एक कम्बल भेजा। गिरीशबाबू ने कम्बल भेजा है सुनकर नागमहाशय कम्बल को बारम्बार प्रणाम करने लगे; फिर उसे सिर पर रख लिया। गिरीशबाबू जानते थे कि नागमहाशय कभी किसी से कुछ लेते नहीं हैं। इसलिए जब उन्होंने श्री देवेन्द्रनाथ से सुना कि नागमहाशय ने कम्बल स्वीकार कर लिया है, तो वे बड़े आनन्दित हुए। पर कुछ दिन बाद गिरीशबाबू के कानों में यह समाचार आया कि नागमहाशय उनके दिए हुए कम्बल को ओढ़ते नहीं हैं, उसे सर्वदा सिर पर ही रखे रहते हैं। यह सुनकर गिरीशबाबू ने उत्कण्ठित हो पुनः देवेन्द्रबाबू को देख आने के लिए भेजा। देवेन्द्रबाबू ने आकर बतलाया कि नागमहाशय सचमुच ही कम्बल सिर पर रखे हुए बैठे हैं!

कलकत्ते में तीन महीने रहकर नागमहाशय पुनः देवभोग चले गए। दीनदयाल का स्वास्थ्य क्रमशः गिरता जा रहा था। इसलिए अब नागमहाशय पूर्ववत् बार-बार कलकत्ता नहीं आ सकते थे।

जब स्वामी विवेकानन्द पहली बार अमेरिका से लौटे, तो मैं उनके दर्शन करने गया। जब उन्होंने सुना कि मैं नागमहाशय के पास जाया करता हूँ, तो कहा, "वयं तत्त्वान्वेषात् मधुकर (नाग) हताः त्वं खलु कृती"—अर्थात्, तत्त्वान्वेषण करते-करते हमारा जीवन व्यर्थ हो गया, हम लोगों में एकमात्र नागमहाशय ही श्रीरामकृष्ण देव की कृती (कृतकार्य) सन्तान हैं। तत्पश्चात् स्वामीजी ने देवभोग जाकर नागमहाशय को देख आने की इच्छा प्रकट की और इस विषय में नागमहाशय को एक पत्र लिखने के लिए मुझसे कहा।

स्वामीजी के स्वदेश लौटने की वात सुनते ही नागमहाशय उनसे मिलने कलकत्ता आए। उस समय वेलुड़ मठ की स्थापना हो चुकी थी और स्वामीजी वहीं वास कर रहे थे। मुझे साथ ले नागमहाशय अपराह्न में वेलुड़ आए और स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम किया। स्वामीजी को अस्वस्थ देखकर नागमहाशय अत्यन्त विचलित हो गए और बोले, "श्रीरामकृष्ण देव कहते थे — आप मुहर की पेटी हैं, इस (आपकी) देह की रक्षा से जगत् की रक्षा होगी, जगत् का कल्याण होगा।" वहुतेरी वातें होने के पश्चात् स्वामीजी ने उनसे मठ में रह जाने के लिए अनुरोध किया। नागमहाशय बोले, "क्या करूँ! श्रीरामकृष्ण देव ने मुझे घर में ही रहने का आदेश दिया है, उनकी आज्ञा का उल्लंघन मैं कैसे करूँ!" नागमहाशय के सम्मानार्थ उस दिन स्वामीजी के आदेश से साधु-ब्रह्मचारियों का पठन-पाठन वन्द रखा गया। सब लोग आकर नागमहाशय और स्वामीजी को घेरकर वैठ गए। स्वामीजी ने ज्योंही 'रामकृष्ण' नाम का उच्चारण किया, त्योंही नागमहाशय उठ खड़े हुए और उच्च स्वर से "जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण" कहते हुए वोले, "उस दिन दक्षिणेश्वर जाकर देखा, श्रीरामकृष्ण वहाँ नहीं हैं — वे तो यहाँ मठ में आकर वैठे हैं।" स्वामीजी ने उनसे पूछा, "यह जो मठ-मन्दिर आदि स्थापित किया गया, वह ठीक हुआ या नहीं?" नागमहाशय वोले, "यह सव प्रभु रामकृष्ण की ही इच्छा से हो रहा है, इससे जीवों का और संसार का कल्याण होगा, परम कल्याण होगा! आप अपने स्वास्थ्य की ओर दृष्टि रखेंगे, आपके हाथ से संसार का कल्याण होगा।" उपस्थित भक्तों को सम्बोधित कर स्वामीजी बोले, "ईश्वर

की कृपा से मनुष्य की ऐसी अवस्था हो सकती है यह बात केवल नागमहाशय को देखकर ही समझ में आ सकती है। त्याग और इन्द्रिय-संयम में ये हम लोगों से बढ़कर हैं।" कुछ समय बाद नागमहाशय को पूजा-गृह में ले जाना हुआ। नागमहाशय 'श्रीमन्दिर, श्रीमन्दिर' कहते हुए द्वार के सामने प्रणाम करने लगे।

प्रतिदिन सन्ध्या के पूर्व स्वामीजी मठ के मैदान में टहलते। आज नागमहाशय भी उनके साथ टहलने लगे। रात में उनका मठ में रहना नहीं होगा यह सुनकर स्वामीजी ने किसी से कहा, "सन्ध्या हो रही है, जाओ, एक नाव ठीक कर आओ।" स्वामीजी से विदा लेते समय नागमहाशय ने उनको 'जय शिव शंकर, जय शिव शंकर' कहते हुए फिर से प्रणाम किया। स्वामीजी ने हाथ पकड़कर उन्हें उठाया और उनसे कहा, "बीच-बीच में आकर हमें दर्शन देकर हम पर कृपा करते रहिए।" स्वामीजी का नाम उच्चारित होते ही वे 'जय शिव शंकर' कहकर अभिवादन करते। पश्चिमी देशों में स्वामीजी के धर्म-प्रचार और दिग्विजय की बात जब कभी उठती, त्योंही नागमहाशय 'महावीर, महावीर' कहकर सिंहनाद कर उठते।

बागबाजार-स्थित श्रीबलराम बसु का घर श्रीरामकृष्ण देव का अत्यन्त प्रिय स्थान था। नागमहाशय उसे "प्रभु का लीलाक्षेत्र" कहा करते थे। श्रीरामकृष्ण के संन्यासी भक्तगण कलकत्ता आने पर वहीं ठहरते। नागमहाशय कभी-कभी वहां जाकर उनके दर्शन करते। एक दिन मैं उनके साथ वहां गया। उस दिन वहां स्वामी ब्रह्मानन्द और स्वामी प्रेमानन्द उपस्थित थे। उनकी आपस में नाना प्रकार की बातें हो रही थीं। नाग-

महाशय के पहुँचते ही उनकी बातें बन्द हो गईं और श्रीरामकृष्ण-प्रसंग चलने लगा। हम लोगों के घर लौटने के समय स्वामी ब्रह्मानन्द ने कहा, "नागमहाशय के आते ही हमारी सब बातें बन्द होकर हमें एकदम श्रीरामकृष्ण-कथा ही स्मरण आने लगी! ऐसे महापुरुषों के चरण-स्पर्श से ही अब तक भारतवर्ष में धर्म-कर्म जागृत है। धन्य हैं नागमहाशय!" श्रीरामकृष्ण के भक्तों के सम्बन्ध में नागमहाशय कहते, "ये लोग मनुष्य का चोला पहनाकर भगवान श्रीरामकृष्ण के साथ लीला करने के लिए आए हैं! इन्हें कौन पहचान सकता है? कौन जान सकता है?" अस्तु।

उधर धीरे-धीरे दीनदयाल का अन्तकाल आ उपस्थित हुआ। जीवन के अन्तिम दिनों वे सन्ध्या-वन्दन, पूजा आदि लेकर ही रहते, तुलसी की माला लेकर जप करते रहते। संसार पर उनकी और कोई आसक्ति नहीं रही। उन्हें किसी प्रकार का शारीरिक रोग आदि नहीं हुआ। एक दिन सवेरे नागमहाशय उन्हें सहारा देकर ला रहे थे कि अचानक रास्ते में उनकी देह अवसन्न हो पड़ी। नागमहाशय ने पिता को गोद में उठाकर घर लाया। लाते-लाते ही दीनदयाल चेतनाशून्य हो गए। घर में लाने के बाद दीनदयाल सचेत तो हुए, पर नागमहाशय समझ गए कि पिता का अन्तिम समय आ गया। डाक्टर बुलाने भेज-कर नागमहाशय पिता को अविराम भगवान का नाम सुनाने लगे, और साथ ही आसन्न-मरण दीनदयाल की रसना भी हरि-नाम लेने लगी। डाक्टर आए। उन्होंने नाड़ी देखकर कहा, "अवस्था खराब है। इनका समय आ गया।" इसके कुछ घण्टे बाद इष्ट-नाम का उच्चारण करते-करते, अस्सी वर्ष की आयु में, दीनदयाल स्वर्गवासी हो गए। पिता की मृत्यु से नाग-

महाशय दुःखित नहीं हुए; वरन् उन्हें तो इस बात का आनन्द हुआ कि भगवान का नाम लेते-लेते पिता की मृत्यु हुई।

नागमहाशय ने विधिवत् पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की। श्राद्ध जीवन का अन्तिम संस्कार है, नागमहाशय की इच्छा हुई कि पिता का श्राद्ध थोड़ा ठाट-बाट से करें, पर पास में पैसा कहाँ?

नागमहाशय की सहायता के लिए नारायणगंज के रेली ब्रदर्स आफिस के बाबू लोग चुपचाप चन्दा इकट्ठा करने लगे। धीरे-धीरे नागमहाशय के कानों में यह बात पहुँची। उन्होंने उसी समय सन्देशा भेजकर नम्रतापूर्वक उन लोगों को ऐसा करने से रोका और गाँव के एक साहूकार के पास अपना मकान रेहन रखकर उससे ५००) कर्ज ले लिए। उनके पड़ोसी चौधुरीबाबू की वृद्धा पत्नी ने भी नागमहाशय की पत्नी को कुछ कर्ज दिया था। इस प्रकार सब मिलाकर श्राद्ध में लगभग १२००) खर्च हुए।

पिता के श्राद्ध के पश्चात् नागमहाशय गया गए। वहाँ मुण्डन आदि करके तीन दिन यथाविधि पिण्डदान करने के बाद वे कलकत्ता आए। उन्होंने सुरेशबाबू से कहा, "अन्तिम समय में पिताजी ने सारी विषय-चिन्ता, वासना आदि को त्यागकर ईश्वर-स्मरण में समय व्यतीत किया और सचेत रहते हुए, ईश्वर का नाम लेते-लेते उन्होंने देह छोड़ी।"

पालबाबुओं ने सुना कि नागमहाशय पिता के श्राद्ध आदि के कारण ऋणग्रस्त हो गए हैं। उन्होंने प्रस्ताव किया कि २००) नजराना के तौर पर ले, किराया बढ़ाकर कुमारटोली के मकान में नया भाड़ेदार रखा जाय। रणजीत ने भी इस प्रस्ताव

का समर्थन किया, पर नागमहाशय किसी प्रकार राजी न हुए। पहले के किराएदार कीर्तिवास ने नागमहाशय की उदारता की वात सुनकर स्वेच्छा से अधिक किराया देना चाहा, पर नागमहाशय ने कहा, "आप दिन-रात परिश्रम करते हैं, तो भी आपकी आर्थिक अवस्था साधारण ही है। आप जो किराया दे रहे हैं, वही आपके लिए अधिक है; मैं और अधिक किराया लेना नहीं चाहता।" नागमहाशय का कीर्तिवास पर पुत्रवत् प्रेम था। जव वे कलकत्ते में रहते, तव कीर्तिवास भी वड़ी श्रद्धा से उनकी सेवा करता। कीर्तिवास आज भी वहीं पर रहता है और नागमहाशय के कमरे तथा उनके टूटे तख्त की श्रद्धापूर्वक देख-भाल करता है। नागमहाशय की पत्नी कलकत्ता आने पर वहीं ठहरती हैं।

श्रीमाताजी उन दिनों वागवाजार में ठहरी हुई थीं। एक दिन मिठाई और कपड़े लेकर नागमहाशय उनके दर्शनार्थ जा रहे थे कि मार्ग में उनके पेट में पीड़ा होने लगी। वे और आगे न वढ़ सके, एक मकान के वरामदे में वहुत समय तक वेसुध-से पड़े रहे। वे यदि चाहते, तो भाड़े की गाड़ी करके घर लौट सकते थे—पास में पैसा भी था, किन्तु माताजी के लिए जो खरीदा गया था, वह उन्हें अर्पण किए विना वे भला किस तरह घर वापस जा सकते थे? वहीं पर पड़े-पड़े वे 'हाय-हाय' करने लगे। लगभग दो घंटे वाद उनकी पीड़ा कुछ कम हुई, तव वे माताजी के दर्शन कर रात को नौ वजे घर लौटे। इसके एक दिन पहले भी उन्हें उदर-शूल से अत्यन्त पीड़ा हुई थी।

उसी वर्ष कलकत्ते में प्रथम वार प्लेग का प्रकोप हुआ। धनी, निर्धन सभी शहर छोड़कर चले गए, वह महानगरी

उजाड़-सी हो गई। पालबाबू लोग अपने कलकत्ते के घर की देख-रेख का भार नागमहाशय को सौंप अपने देश चले गए। उनके घर में एक रसोइया, एक ब्राह्मण मुंशी और एक नौकर— बस इतने ही प्राणी थे। मैं एक दिन नागमहाशय से मिलने गया। उन्हें अपने घर में न पा मैं इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। बाद में पालबाबुओं के यहाँ आकर देखा — वे चश्मा लगाकर गीता-पाठ कर रहे हैं। मुझे वहाँ आया देख वे बोले, "मैं भला गीता क्या समझूँ? आप ब्राह्मण हैं, पण्डित हैं; इस सबके आप लोग ही अधिकारी हैं। मैं ठहरा अनाड़ी, मुझे इसमें से कुछ सुनाइए।" गीता के "कर्मण्यकर्म यः पश्येत्" श्लोक की मैंने उन्हें पाँच-छः प्रकार की व्याख्या सुनाई। उन सबमें श्रीधर-स्वामी की टीका ही उन्हें सबसे अच्छी लगी। इसके तीन दिन बाद उस ब्राह्मण मुंशी को प्लेग हो गया। देखने के लिए एक डाक्टर आया। पर उसकी सेवा-शुश्रूषा करे कौन? प्लेग के रोगी को कोई छूता तक न था। अतः नागमहाशय अकेले ही रोगी की सेवा-शुश्रूषा करते और उसे पथ्य-दवाई आदि देते। इसी बीच मैं एक दिन उनके पास पहुँचा। उन्होंने कहा, "देखिए, आप अभी पाँच-सात दिन और यहाँ न आइए।"

मैं — आप जब यहाँ हैं, तब मुझे क्या भय?

नागमहाशय — लोक-व्यवहार मानना पड़ता है — सब लोग जैसा कहते हैं, वैसा चलना पड़ता है। यह संक्रामक रोग है, अतः कुछ दिन न आना ही ठीक है।

उसी दिन उस ब्राह्मण की मृत्यु हो गई। वह मृत्यु के पूर्व गंगातट पर ले चलने का आग्रह करने लगा। अन्य कोई न मिलने पर नागमहाशय अकेले ही उसे सहारा देते हुए निकटवर्ती

गंगा-घाट पर ले गए। वहाँ पर थोड़ी ही देर में 'गंगा, गंगा' कहते-कहते नागमहाशय की गोद पर उस ब्राह्मण की मृत्यु हो गई। पालबाबू के नौकर को शव के पास रख नागमहाशय मृत ब्राह्मण की अन्त्येष्टि-क्रिया करने के लिए किसी ब्राह्मण की खोज में निकले। प्लेग से मृत्यु हुई थी, अतः कोई आना नहीं चाहता था। अन्त में प्रत्येक को चार-चार रुपए देना स्वीकार करने पर किसी प्रकार चार-पाँच लोग मिले। इस कार्य में नागमहाशय के लगभग पचीस रुपए खर्च हो गए। उसी दिन बाबू सुरेन्द्रनाथ सेन, आशुतोष चौधुरी और नरेन्द्रनाथ बसु नागमहाशय के दर्शनार्थ आए थे—घाट पर ही उनसे भेंट हो गई। सुरेन्द्रबाबू और आशुतोषबाबू तो उनका कार्य देखकर आश्चर्य से स्तम्भित रह गए। पर नरेन्द्र बसु को वह सब अच्छा न लगा, कहने लगे, "ये तो पूरे पागल दिखते हैं!"

इसी समय की बात है, नागमहाशय एक दिन कालीघाट गए। लौटते समय गढ़ के मैदान में उनकी एक भक्त से भेंट हो गई। भक्त उन्हें कलकत्ते का विख्यात उद्यान 'ईडन गार्डन' दिखाने ले गया। बगीचा देखकर नागमहाशय छोटे बच्चे के समान आनन्द प्रकट करने लगे और 'यह क्या है' 'वह क्या है' पूछने लगे। घर लौटते समय उन्होंने कहा, "मनुष्य सारे समय केवल भोग के ही पीछे पागल के समान दौड़ रहा है। कहाँ तो यह देह धारण कर जन्म-मृत्यु का रहस्य समझने का प्रयत्न करना चाहिए, और कहाँ वैसा न कर वह केवल ऊपर-ऊपर से मधुर प्रतीत होनेवाले कुछ विषय-भोगों में ही अपने को भूला पड़ा है! इतना भी ज्ञान नहीं कि यहाँ से शीघ्र ही चला जाना पड़ेगा। इस संसार में बस तमोगुण और रजोगुण का ही

राज्य है—सारे समय केवल दौड़-धूप, केवल 'कामिनी-कांचन' का राज्य! हा प्रभु, हा रामकृष्ण! तुम्हारी यह कैसी विचित्र लीला है!"

कुछ दिनों पश्चात् नागमहाशय गिरीशबाबू के यहाँ गए। श्रीरामकृष्ण देव के प्रसंग में स्वामी निरंजनानन्द ने उनसे पूछा, "देखिए, श्रीरामकृष्ण देव तो कहते थे कि 'अपने को दीन-हीन सोचते रहने से मनुष्य दीन-हीन ही हो जाता है', तब भला आप दिन-रात इस प्रकार अपने को दीन-हीन क्यों समझते रहते हैं?" नागमहाशय बोले, "अपनी आँखों से देख रहा हूँ कि मैं अत्यन्त हीन हूँ, बिलकुल अधम हूँ, तब फिर मैं अपने आपको भला कैसे शिव समझ सकता हूँ? आप अपने को वैसा समझ सकते हैं, गिरीशबाबू भी अपने को वैसा कह सकते हैं, आप लोग श्रीरामकृष्ण देव के भक्त हैं; पर मेरी इस प्रकार भक्ति कहाँ हुई? आप लोगों की कृपा होने से, प्रभु रामकृष्ण की दया होने से मैं तो धन्य हो जाऊँगा!" नागमहाशय ने यह बात इतने दीन-हीन भाव से कही कि स्वामी निरंजनानन्द निरुत्तर हो गए—वे किसी प्रकार युक्ति, तर्क या प्रतिवाद न कर सके। इस घटना का उल्लेख कर गिरीशबाबू कहते, "यथार्थ दीनता आने पर, अहं-बुद्धि का यथार्थ में नाश होने पर, मनुष्य की नागमहाशय के समान अवस्था होती है। ऐसे महापुरुषों के चरण-स्पर्श से धरती पवित्र हो जाती है।"

उसी दिन अपने निवासस्थान पर कुछ उपस्थित सज्जनों के समक्ष नागमहाशय अपने को 'पाप का पुतला' 'कीट से भी तुच्छ कीट' कहने लगे। इतने में उन्हें स्वामी निरंजनानन्द की बात स्मरण हो आई। वे बोले, "आज ही गिरीशबाबू के

यहाँ से सुन आया कि अपने को कीट-कीट कहने से कीट बन जाना पड़ता है और शिव-शिव कहने से शिवत्व की प्राप्ति होती है। सो अब मैं क्या करूँ!" थोड़ा सोचकर वे फिर बोले, "सच कहने में दोष नहीं है। मैं सचमुच ही कीट हूँ; कीट को कीट कहने में कोई दोष नहीं। सच बात में क्या आपत्ति है? यदि प्रभु रामकृष्ण की कृपा हुई, आप लोगों की कृपा हुई, गिरीशबाबू की कृपा हुई, तो मैं कभी सत्य मार्ग छोड़कर असत्य पर पैर नहीं रखूँगा।" ऐसा कहकर वे सबको प्रणाम करने लगे। श्रीरामकृष्ण देव एवं गिरीशबाबू के उद्देश्य से वे बारम्बार प्रणाम करने लगे। कुछ समय तक आँखें मूँदकर बैठे रहने के पश्चात् वे पुनः बोले, "यह हाड़-मांस का पिंजरा लेकर मैं किस प्रकार अपने को शिव कहने का अभिमान कर सकता हूँ? गिरीशबाबू महावीर हैं, साक्षात् भैरव हैं, वे सचमुच ही शिव हैं।" ऐसा कहकर उन्होंने पुनः गिरीशबाबू के उद्देश्य से प्रणाम किया। तत्पश्चात् उपस्थित सज्जनों के निमित्त हुक्का भरते हुए बोले, "मैं आप लोगों की भला और क्या सेवा कर सकता हूँ, तमाखू ही सजाकर दूँ।"

नागमहाशय के देवभोग लौट जाने के कुछ पहले रामकृष्णपुर के नवगोपाल घोष के घर में एक दिन श्रीरामकृष्ण देव का उत्सव हुआ। 'वसुमती' पत्रिका के सर्वेसर्वा उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय नागमहाशय से वहाँ जाने के लिए अनुरोध करने लगे। मैंने भी उनका समर्थन किया। उत्सव के दिन सवेरे मुझे साथ ले नागमहाशय आहिरीटोला में उपेन्द्रबाबू के घर उपस्थित हुए। बीडनस्ट्रीट के चौरस्ते पर आकर एक भाड़े की गाड़ी ठीक की गई। नागमहाशय ने कहा, "मैं पैदल ही जाऊँगा, आप लोग

गाड़ी में जायँ।" उपेन्द्रबाबू यह जानते थे कि घोड़े को चाबुक मारने से नागमहाशय बड़े व्यथित होते हैं। अतः इस सम्बन्ध में उन्होंने गाड़ीवाले को विशेष सावधान कर दिया। तत्पश्चात् बहुत विनती करने पर नागमहाशय गाड़ी में बैठे। गाड़ी नवगोपालबाबू के मकान पर पहुँची। नवगोपालबाबू नागमहाशय को देखकर 'जय राम, जय राम' कहने लगे। नागमहाशय ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। घर में प्रवेश कर नागमहाशय बैठकखाने के एक कोने में जाकर खड़े हो गए और उपस्थित लोगों को हवा करने लगे। नवगोपालबाबू और उपस्थित सज्जनों में से कोई भी उन्हें ऐसा करने से रोक न सका। अविराम 'श्रीरामकृष्ण'-नाम से रामकृष्णपुर गूँजने लगा; उत्सव के आनन्द और संकीर्तन की उमंग में भक्त लोग विभोर हो गए; परन्तु नागमहाशय के लिए तो आज उस भक्तमण्डली की सेवा के सिवाय दूसरा काम ही नहीं था। शान्ति से खड़े-खड़े वे लगातार उस मण्डली को हवा कर रहे थे, मानो उन्होंने सेवा करने के लिए ही जन्म-ग्रहण किया हो। तत्पश्चात् जब भक्त-मण्डली प्रसाद पाने बैठी, तो वे उनके पीछे-पीछे जाकर हाथ जोड़े खड़े रहे। सभी के आग्रह के कारण उन्होंने हाथ पर बस थोड़ासा प्रसाद ले लिया, पर वे खाने नहीं बैठे। सब कोई चकित हो उनकी ओर देखने लगे।

कलकत्ता लौटते समय भक्तों ने उनसे गाड़ी में चढ़ने के लिए बहुत अनुरोध किया, पर वे न माने। अतएव हम लोग भी पैदल ही चले। आते-आते नागमहाशय ने कहा, "श्रीरामकृष्ण देव कहते थे कि नवगोपाल की पत्नी ने विद्या-माया के अंश से जन्म लिया है। उन्होंने स्वयं नवगोपालबाबू की पत्नी के हाथ

का अन्न खाया था! इन लोगों को जो मनुष्य समझे, वह पशु है!"

कुछ दिन बाद नागमहाशय देवभोग लौट गए। कलकत्ते में यही उनका अन्तिम निवास था।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के लीला-संवरण के पश्चात् नागमहाशय जब पहली बार देवभोग गए, तब उन्होंने सोचा था कि एक कुटी बनाकर अकेले रहेंगे। उनकी पत्नी ने उनका मनोभाव भाँपकर कहा, "मैंने आपको किसी भी दिन किसी बात के लिए कष्ट नहीं दिया है, और कभी दूँगी भी नहीं, फिर आप इस प्रकार अलग रहने का क्यों सोच रहे हैं?" साध्वी सहधर्मिणी के आश्वासन से निश्चिन्त हो नागमहाशय संसार में रहने लगे; पर संसार में रहते हुए भी वे आजीवन संन्यासी के धर्म का पालन करते रहे। उनकी पत्नी कहतीं, "उनके (नागमहाशय के) शरीर या मन में कभी भी किसी प्रकार का मानवी विकार या परिवर्तन दिखाई नहीं दिया। 'जय रामकृष्ण' कह-कहकर उन्होंने जीव-भाव को कुचलकर नष्ट कर डाला था। वे सर्वदा आग में रहते थे, पर एक दिन के लिए भी उनका शरीर उस आग से झुलसा नहीं।"

नागमहाशय ने अपने प्रधान भक्त हरप्रसन्न से किसी समय कहा था, "देखो, पशु-पक्षियों की योनि को भी मैंने आजन्म मातृयोनि ही समझा है।"

एक समय नागमहाशय के कुलगुरु के दो सम्बन्धी उनके दर्शन करने देवभोग आए। उनमें से एक साधक थे—उनका नाम था नवीनचन्द्र भट्टाचार्य। दीनदयाल ने नवीनचन्द्र से विनती की कि आप दो बातें कहकर दुर्गाचरण का मन गृहस्थाश्रम की ओर

झुकाइए, उसके पुत्र न होने से मैं निर्वंश हो जाऊँगा। दीनदयाल के कहने के अनुसार नवीनचन्द्र ने नागमहाशय को गृहस्थाश्रम का मर्म बताकर, प्रजोत्पत्ति करने के लिए समझाया। उनकी बात कानों में पड़ते ही नागमहाशय बेसुध-से होकर धड़ाम से नीचे गिर पड़े—शरीर में कई जगह चोट आ गई। "आप मेरे गुरु-वंश के साधक होकर भी मुझे इस प्रकार असंगत उपदेश कैसे दे रहे हैं"—ऐसा कहते हुए उन्होंने पास में पड़ा हुआ ईंट का टुकड़ा उठा लिया और उससे अपने मस्तक पर आघात करने लगे। इससे कपाल फूट गया और घर-घर खून बहने लगा। तब तो नवीनचन्द्र को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने अपने शब्द वापस ले लिए। नागमहाशय ने तब शान्त हो उनकी पद-धूलि ली।

श्री हरेन्द्रचन्द्र नाग कहते हैं, एक दिन दीनदयाल ने नागमहाशय की कड़ी भर्त्सना करते हुए कहा, "अरे! इस प्रकार तुझे अन्न-वस्त्र कहाँ से मिलेगा? तेरा संसार कैसे चलेगा?" नागमहाशय ने उत्तर दिया, "बाबा, अन्न-वस्त्र की मुझे क्या चिन्ता? वृक्षों पर बहुतसे पत्ते हैं, वही मेरा अन्न है। और जीवन में मैंने किसी भी दिन स्त्री का स्पर्श नहीं किया; माता के गर्भ से जिस अवस्था में बाहर आया, मैं आज भी उसी अवस्था में हूँ। मुझे वस्त्र की क्या आवश्यकता?"

अपने एकमात्र पुत्र के इस प्रकार वैराग्य को देखकर दीन-दयाल कभी-कभी नागमहाशय को बहुत खरी-खोटी सुनाते। एक दिन इसी प्रकार पिता-पुत्र में कहा-सुनी हो गई। उससे नागमहाशय बड़े खिन्न हो गए और उत्तेजित स्वर से बोले, "मैंने जीवन में कभी स्त्री-संग नहीं किया; मेरे संसार में रहने

की कोई आवश्यकता नहीं।" और तत्पश्चात्, "नाहं नाहं" कहते हुए वे अपने सारे कपड़े उतारकर घर से वाहर निकल गए। उनकी पत्नी रोने-पीटने लगीं। उन्हें इस प्रकार व्याकुल देख नागमहाशय के भक्त श्री अन्नदा पीछे-पीछे जाकर नागमहाशय को वहुत समझा-वुझाकर कुछ दूर से घर लौटा लाए।

देवभोग की एक प्रौढ़ विधवा नित्य नागमहाशय के दर्शन के लिए आती और उनके प्रति वड़ी भक्ति रखती। पर नागमहाशय की तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि के सामने उस विधवा का दूषित मनोभाव गुप्त न रह सका। इस प्रौढ़ वय में भी विधवा के मन की इस प्रकार दुर्गति देखकर नागमहाशय मन-ही-मन उसको करुणा की दृष्टि से देखते और वड़ा खेद प्रकट करते। उनकी पत्नी ने उस विधवा का मनोभाव जानने पर उसका अपने यहाँ आना वन्द कर दिया। नागमहाशय कहते, "हाय, हाय, कौए-कुत्ते को भी इस सूखी ठठरी का मांस नहीं रुचेगा। पर उसका इस शरीर के प्रति वैसा भाव कैसे हो गया! अहा! प्रभु रामकृष्ण कितने प्रकार से मेरी परीक्षा ले रहे हैं! जय रामकृष्ण! जय रामकृष्ण!" फिर वोले, "मनुष्य के लिए इन दो वातों को जीतना वड़ा कठिन है—एक है जीभ, और दूसरी है उपस्थ! प्रभु रामकृष्ण की कृपा हो, तभी ये वश में किए जा सकते हैं।" नागमहाशय के मुख से निकली छोटी-छोटी वातों में भी महान् अर्थ भरा रहता था। वे सदैव कहा करते, "काम छोड़े कि राम और रति छोड़ी कि सती।"

कामिनी के समान कांचन के प्रति भी नागमहाशय का वैराग्य तीव्र था। एक वार नारायणगंज के पालवावुओं के एक नातेदार को माता निकली। कोई भी औषधि काम की सावित

नहीं हुई। पालबाबुओं को नागमहाशय के डाक्टरी ज्ञान की ख्याति पहले से विदित ही थी। उन्होंने अन्त में नागमहाशय की शरण ली। नागमहाशय भी उनके अनुरोध को किसी प्रकार टाल न सके। रोगी को देखकर उन्होंने होमियोपैथी की एक दवाई लिख दी। पालबाबुओं ने वह दवाई मँगवाकर रोगी को खिलाई। उससे रोगी थोड़े ही दिनों में चंगा हो उठा। पालबाबुओं ने प्रसन्न हो उक्त कार्य के लिए नागमहाशय को ३००) पुरस्कार देना चाहा, पर नागमहाशय ने रुपयों को स्पर्श तक न किया। अन्त में जब पालबाबू लोग उनसे रुपए ग्रहण कर लेने के लिए बहुत ही आग्रह करने लगे, तब तो नागमहाशय विचलित हो रोने लगे और बोले, "हा प्रभु! हा रामकृष्ण! तुमने भला मुझे यह हीन डाक्टरी विद्या क्यों सिखाई! देखो न, उससे आज मुझे कितना दुःख भोगना पड़ रहा है!" उनको इस प्रकार करुण क्रन्दन करते देख पालबाबुओं की आँखें भर आई, उन्होंने कहा, "बाबा, तुम मनुष्य नहीं हो!"

इस अलौकिक पुरुष के सारे व्यवहार अलौकिक थे। एक समय पालबाबुओं के अनुरोध से वे भोजेश्वर गए। कलकत्ता लौटते समय बाबुओं ने उन्हें स्टीमर के किराए के लिए आठ रुपए एवं उनके अपने लिए एक कम्बल दिया। उस समय भोजेश्वर से लगभग तीन कोस की दूरी पर हाँसेरकांदी में स्टीमर-स्टेशन था। वहाँ पहुँचकर नागमहाशय टिकट खरीदने जा ही रहे थे कि इतने में वहाँ तीन-चार छोटे-छोटे बच्चे साथ में लिए हुए एक भिखारिन आई और अपना दुःखड़ा रोकर उनसे भिक्षा माँगने लगी। उसकी वह करुण अवस्था देखकर नागमहाशय रो उठे। वे पालबाबुओं के दिए हुए आठ रुपए और कम्बल उन

भिखारिन को देते हुए बोले, "लो माँ, इससे अपने और अपने बच्चों की रक्षा करो।" वह भिखारिन दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद देती हुई चली गई। नागमहाशय बहुत दूर से चलकर आए थे, अतः वे स्टेशन पर बैठकर विश्राम करने लगे। स्टीमर छूट जाने के बाद वे कलकत्ते की ओर पैदल ही रवाना हुए। यदि रास्ते में कहीं मन्दिर मिल जाता, तो वहाँ का प्रसाद पा लेते, अन्यथा थोड़े से मुरमुरे चबा लेते। यदि रास्ते में कोई बड़ी नदी लगती, तो नाववाले को पैसे-दो पैसे देकर नाव द्वारा पार हो जाते, और सकरा नाला होने से तैरकर ही दूसरे पार चले जाते। उनके पास केवल साढ़े सात आने थे। बस उसी के आधार पर पैदल चलते-चलते उनतीसवें दिन वे कलकत्ता पहुँचे।

एक समय बहुत दिनों तक ठीके का काम बन्द रहने के कारण नागमहाशय को पैसे की बड़ी तंगी होने लगी थी। कभी-कभी तो उन्हें उपवास करना पड़ जाता था। बहुत समय के बाद एक दिन पालबाबुओं का दो हजार मन नमक रवाना हुआ। उसके लिए नागमहाशय को खिदिरपुर जाना पड़ा। दो हजार मन पर उन्हें सात-आठ रुपए मिलने चाहिए थे, पर सारा दिन धूप में काम करने के बाद उन्हें बस तेरह आने मिले। वे घर लौट रहे थे कि रास्ते में गढ़ के मैदान के पास एक व्यक्ति उनके पास आकर अपना दुखड़ा रोने लगा। नागमहाशय ने उस दिन की सारी कमाई उस आदमी को दे दी और खाली हाथ घर लौट आए। घर में उस दिन चावल तक न था। अतः उन्हें उस दिन भी उपवास करना पड़ा।

सुनते हैं कि नागमहाशय जब छोटे थे, तब कुत्ते या बिल्ली के चिल्लाने से उन्हें ऐसा लगता कि वे भूख से व्याकुल होकर

रो रहे हैं, और वे करुण स्वर से भगवती से कहते, "अरे! अरे! बुआ, ये ऐसा क्यों रो रहे हैं भला? उनको कुछ खाने को दे दो न।" कभी-कभी वे स्वयं उनको खाने को दे देते और कहते, "अब तुमको खाने के लिए दे दिया है न! अब तुम रोना मत।"

उनके घर से लगा हुआ एक छोटासा तालाब था। जब वे तेरह-चौदह वर्ष के थे, तो वे भोजन के बाद मुँह-हाथ धोने नित्य उस तालाब पर जाते और जाते समय हाथ में भात के कुछ दाने ले जाते। उस तालाब की मछलियाँ मानो उनकी पोसी-सी हो गई थीं—वे उनसे इतनी हिल-मिल गई थीं कि उनके पुकारने से ही वे पानी की सतह पर आ जातीं और उनके हाथ पर से भात खाने लगतीं। वे मछलियों को हाथ में लेकर सहलाते। पढ़ने के लिए कलकत्ता जाने के पहले तक वे मछलियों से इस प्रकार खेला करते थे। इस बात का स्मरण कर वे कहते, "अन्य साधारण जीवों में भी कम या अधिक मात्रा में ज्ञान का विकास दिखाई देता है। अनेक जन्मों के पश्चात् उन्हें भी उच्च गति प्राप्त होगी और अन्त में वे भी मुक्त हो जायेंगे।"

श्री हरेन्द्रचन्द्र नाग कहते, "मैं एक समय नागमहाशय के पास सर्वदा आया-जाया करता था। एक दिन गरमी में सवेरे उनके यहाँ जाकर देखता हूँ, वे मण्डप में बैठे हुए हैं। मैं आँगन में खड़ा होकर उनसे बातें करने लगा। कुछ देर बाद दो वन्य मैना पक्षी आकर नागमहाशय के पास बैठ गए। नागमहाशय एकाग्रचित्त से बैठे थे, अतः उनका ध्यान उस ओर नहीं गया। तब उनका ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए पक्षियों ने पैर से जमीन कुरेदना शुरू किया। नागमहाशय का ध्यान उनकी ओर

जाते ही उन्होंने उन पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरते हुए कहा, 'आई हो माँ! ठहरो, मैं तुम लोगों को खाने को देता हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने घर से एक मुट्ठी चावल लाया और उन पक्षियों को हाथ से खिलाने लगे। पर इतने से उनका पेट न भरा। वे नागमहाशय के चारों ओर फुदकने लगे। तब नागमहाशय अन्दर जाकर एक कटोरी में चावल और दूसरी में पानी ले आए और दोनों कटोरियों को अपने हाथों पर ही रखे रहे। वे दोनों पक्षी उनके हाथ पर बैठकर चावल खाने लगे। उनकी तृप्ति होने पर नागमहाशय पुनः उनकी देह सहलाने लगे और बोले, 'अब जाओ माँ! जाकर जंगल में मौज करो। कल फिर आना।' उनके ऐसा कहते ही वे दोनों पक्षी उड़ गए। तब नागमहाशय ने कहा, 'प्रभु रामकृष्ण कितने प्रकार से खेल रहे हैं!'"

गिरीशबाबू कहते, "एकमात्र नागमहाशय ही 'अहिंसा परमो धर्मः' के ज्वलन्त दृष्टान्त हो सकते हैं।" नारायणगंज के जूट मिल के साहब कभी-कभी पक्षियों का शिकार करने देवभोग आया करते थे। एक समय की बात है, नागमहाशय ने बन्दूक छूटने का शब्द सुना। वे वैसे ही दौड़े गए और साहबों के पास पहुँचकर उनसे ऐसा निष्ठुर कार्य न करने के लिए हाथ जोड़कर विनती करने लगे। साहबों को उनका कहना बिलकुल समझ में न आया और वे पक्षियों को मारने के लिए फिर से बन्दूकें भरने लगे। तब नागमहाशय गरजकर बोले, "ऐसा दुष्ट कर्म आप और मत करें।" साहबों ने सोचा — यह कोई पागल है। पागल की बात भला कौन सुने! शिकार पर निशाना साधकर साहबों ने बन्दूकें उठाई ही थीं कि नागमहाशय ने लपककर उनकी बन्दूकें पकड़ लीं। उस दुबले-पतले शरीर में

न जाने कहाँ से सौ सिंहों का बल आ गया ! साहबों ने बन्दूकें वापस लेने के लिए बहुत छीना-झपटी की, पर सब व्यर्थ हुआ। नागमहाशय बन्दूकें लेकर घर आए और प्राणघातक हथियार को मैंने स्पर्श किया ऐसा सोचकर उन्होंने अपने हाथ धो डाले। इधर साहब लोग भी नारायणगंज लौटकर परामर्श करने लगे कि उस व्यक्ति पर नालिश की जाय। इसी बीच नागमहाशय ने जूट मिल के एक कर्मचारी के हाथ साहबों की दोनों बन्दूकें लौटा दीं। उस कर्मचारी से नागमहाशय के साधु-चरित्र की बात सुनकर साहबों के मन में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। उस समय से उन्होंने देवभोग में शिकार के लिए जाना बन्द कर दिया।

निरीह प्राणियों का दुःख देखकर नागमहाशय तिलमिला उठते थे। उनके घर के दक्षिण ओर एक छोटासा डबरा था। हर साल पानी के प्रवाह के साथ बहुतसी मछलियाँ बहकर आ जातीं और उस डबरे में जमा हो जातीं। एक दिन एक ढीमर उस डबरे में मछली पकड़ने आया। तदनन्तर वहाँ की प्रथा के अनुसार वह नागमहाशय को उनका हिस्सा देने मछलियों की टोकरी लेकर गया। जीवित मछलियों को छटपटाते देख नाग-महाशय को बड़ा ही दुःख हुआ। उन्होंने ढीमर से सभी मछलियों का दाम पूछा। फिर उसका बताया हुआ पूरा दाम उसे देकर उन्होंने सारी मछलियाँ खरीद लीं और उन्हें ले जाकर फिर से उस डबरे में छोड़ दिया।

और एक दिन की बात है। एक ढीमर उनके घर के पास के तालाब से मछलियाँ पकड़कर उनके यहाँ बेचने आया। मछलियों को टोकनी में छटपटाते देखकर नागमहाशय ने सारी

मछलियाँ खरीद लीं और तुरत उन्हें तालाब में छोड़ आए। ढीमर तो आँख फाड़-फाड़कर देखने लगा! मछलियों का दाम और टोकनी वापस मिलते ही वह वहाँ से तीर की तरह भागा और फिर कभी उसने नागमहाशय के घर के साए तक में पैर न रखा!

नागमहाशय के घर में प्रतिवर्ष देवी की पूजा होती थी, पर कभी भी उन्होंने पशु-बलि नहीं दी। यहाँ तक कि जहरीले साँप को भी वे कभी मारते नहीं थे। एक दिन उनके आँगन में एक करैत साँप निकला। घर के सब लोग बड़े भयभीत हो गए। उनकी पत्नी ने पूछा, "साँप को मार डालने से नहीं बनेगा?" वे बोले, "नहीं, जंगल का साँप नहीं काटता, मन का साँप काटता है।" तत्पश्चात् साँप के सामने हाथ जोड़कर बोले, "आप माता मनसा देवी हैं। आप तो जंगल में रहती हैं, इस दरिद्र की कुटिया छोड़कर अपने स्थान को चली जायँ।" और ऐसा कहकर वे चुटकी बजा-बजाकर रास्ता दिखाते हुए चलने लगे। वह साँप भी अपना सिर नीचा कर उनके पीछे-पीछे जाने लगा और फिर जंगल में जाकर घुस गया। इस घटना का उल्लेख कर वे कहते, "यदि कोई दूसरे का अनिष्ट न करे, तो दुनिया में कोई भी उसका अनिष्ट नहीं कर सकता। जो जैसा करता है, संसार भी उसके प्रति उसी प्रकार का व्यवहार करता है। यह कैसा है, जानते हो?—जैसा ऐने में अपना प्रतिबिम्ब देखना; हम जिस प्रकार अपने अंगों को टेढ़ा-मेढ़ा करेंगे, प्रतिबिम्ब भी ठीक वैसा ही करेगा।"

जब श्रीरामकृष्ण-मठ वराहनगर में था, तब एक दिन वहाँ एक साँप का बच्चा निकला। गिरीश कहते हैं—उसे

देखते ही सब कोई मारने के लिए उद्यत हो गए। ऐसे समय नागमहाशय आए और 'नागराज, नागराज' कहकर उसके प्रति स्नेह प्रदर्शित करते हुए उसे एक दूर स्थान में छोड़ आए। आकर बोले, "हम लोग अपनी ही बुद्धि के दोष के कारण अपराध करके अपने आपको कष्ट देते हैं। जब यही बुद्धि ईश्वर के पादपद्मों में स्थिर हो जाती है, तब फिर और कोई बात हमें बुरी नहीं प्रतीत होती।"

एक बार उन्हें साँप ने डस लिया। वे तालाब के घाट पर पानी में पैर डुबोए मुँह धो रहे थे कि एक साँप ने उनके बाएँ पैर के अँगूठे को पकड़ लिया। नागमहाशय स्थिर भाव से खड़े हो गए। कुछ देर बाद साँप उनका अँगूठा छोड़कर चला गया। उनकी पत्नी तो यह घटना सुनकर बहुत घबड़ा गईं; नागमहाशय ने समझाया, "डरने की कोई बात नहीं। खाने की कोई चीज समझकर पानी के साँप ने अँगूठे को पकड़ लिया था। कुछ ही क्षण बाद वह छोड़कर चला गया।"

वे कहते, "प्रत्येक जीव में वही एक ईश्वर विराजमान है।" एक समय उनसे किसी ने पूछा, "आप सदैव हाथ क्यों जोड़े रहते हैं?" इस पर उन्होंने उत्तर दिया था, "सर्वभूतों में वे प्रभु प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं।" यदि कोई वृक्ष से पत्ती तोड़ता, तो उससे भी उन्हें मार्मिक वेदना होती। उनके रसोई-घर के पिछवाड़े में आम का एक पेड़ था। एक दिन एक भक्त को उसका एक पत्ता तोड़ते देख उन्होंने कहा था, "अरे! इनको भी तो सुख-दुःख का बोध होता है!"

उनके घर के पूर्व ओर पिछवाड़े में बाँस की एक झाड़ी थी। कभी-कभी उसकी शाखाएँ घर के अन्दर आ जातीं, जिससे

वड़ी असुविधा होती। पर वे किसी को उन शाखाओं को काटने नहीं देते थे, कहते, "जिसे बना नहीं सकते, उसे काटना क्या उचित है ?"

उन्हें मैंने कभी एक मच्छर तक को मारते नहीं देखा। वे वड़े प्रेम के साथ खटमल को अपने बिस्तर पर स्थान देते थे। उन्हें ऐसा करते मैंने कई वार देखा है। यदि कभी उनके शरीर पर चींटी चढ़ जाती, तो वे वड़ी सावधानी से उसे किसी सुरक्षित स्थान पर छोड़ आते। कभी-कभी तो उनके मन की ऐसी दशा हो जाती कि पैर से कीड़े-मकोड़े दवकर मर जाने के भय से वे रास्ता नहीं चल पाते। श्वास-प्रश्वास से हवा में तैरनेवाले अदृश्य कीटाणु कहीं मर न जायँ, इस आशंका से कभी-कभी उनकी साँस ही वन्द हो जाती !

एक दिन एक भक्त नागमहाशय के घर के पूजा-मण्डप में वैठे हुए थे। मकान के चारों ओर वाँस का घेरा लगा था। भक्त ने देखा कि पूर्व ओर के घेरे में दीमक लग गई है। देखते ही वे उठे और जाकर उस घेरे पर जोर से आघात करने लगे। इससे वहुतसी वाँवियाँ टूटकर गिर पड़ीं और वहुतसी दीमकें निराश्रय हो गईं। नागमहाशय मण्डप के वरामदे में वैठे थे। यह देखकर उन्होंने कातर स्वर में कहा, "हाय, हाय, यह क्या किया आपने ! यह घेरा ही इतने दिनों से इन लोगों का आधार था, उस पर उन्होंने वाँवियाँ वनाईं, और आज आपने उनका संसार उजाड़ दिया ! यह आपने वड़ा अन्याय किया।" ऐसा कहते-कहते उनकी आँखों से आँसू की धारा वह चली। भक्त तो यह देखकर स्तव्ध हो गए। अन्त में नागमहाशय उन निराधार कीड़ों के पास आए और वोले, "आप लोग फिर से घर वना

डालिए, अब कोई भय नहीं है।" दीमकों ने यथासमय फिर से उस घेरे पर अपनी बाँवियाँ बना लीं। कालान्तर में वह घेरा खिसक गया, पर तो भी नागमहाशय ने किसी को उसकी मरम्मत नहीं करने दी।

सुरेश कहते हैं, "नागमहाशय आजन्म गाय की भक्ति-पूर्वक सेवा करते थे। उन्होंने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार कभी गो-दान या गो-पूजन किया या नहीं, यह तो नहीं मालूम; पर वे बिलकुल छुटपन से गाय दिखते ही उसे नमस्कार करते। मैंने स्वयं उन्हें कई बार गायों की पद-धूलि लेते देखा है। एक समय की बात है, वे एक गन्ना लाए। एक गाय आकर उसके पत्ते खाने का प्रयत्न करने लगी। नागमहाशय ने जब यह देखा, तो वे स्वयं उस गन्ने के पत्ते तोड़कर बड़ी श्रद्धा के साथ उस गाय को खिलाने लगे। अन्त में भगवती-ज्ञान से उसे प्रणाम किया। गाय की देह पर हाथ फेरते हुए वे गन्ने के टुकड़े करके उसे खिलाने का प्रयत्न करने लगे। तत्पश्चात् उसे पंखा झलते-झलते वे इतने तन्मय हो गए कि बेसुध-से जमीन पर गिर पड़े।"

नागमहाशय शक्ति-उपासक थे; पर वे कहते, "पथ या मत में क्या धरा है? किसी भी मत में एकनिष्ठा हो, तो भगवान उसे ठीक-ठीक मार्ग दिखा देते हैं।" उनमें भेद-बुद्धि नहीं थी; शैव, वैष्णव, बाउल, कर्ताभजा आदि सभी सम्प्रदाय के साधकों का वे समान रूप से आदर करते थे। उनमें हिन्दू, मुसलमान या ईसाई का भेद नहीं था। मसजिद या कोई पीर का स्थान देखते ही वे माथा नवाकर सलाम करते। गिरजाघर देखने पर 'जय ईशु' कहकर अभिवादन करते।

साधना के सम्बन्ध में वे कहते, "जैसे फल खाने की इच्छा

से वृक्ष के नीचे जागते बैठा रहना पड़ता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् में फल-प्राप्ति की इच्छा से अपने को साधना द्वारा जागृत रखना पड़ता है। पर एक बात ध्यान में रखनी होगी, सारे खजाने की कुंजी श्रीभगवान के हाथ में है—वे यदि दया करके फल दे दें, तभी जीव उस सबका अधिकारी होता है, अन्यथा नहीं। फिर ऐसे भी प्रकार के जीव हैं, जो बिना साधन-भजन किए, केवल ईश्वर की कृपा से, सिद्ध हो जाते हैं। ये ही 'कृपा-सिद्ध' कहलाते हैं। यह किस प्रकार है, जानते हो? जैसे कोई सोया हुआ है, और भगवान दया करके उसके मुँह में फल टपका देते हैं—फल को पाने के लिए उसे कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता। जब तक उनकी कृपा नहीं होती, तब तक उनके स्वरूप को जानना किसी के बस की बात नहीं। वे तो कल्पतरु हैं—जो माँगो वही देते हैं; परन्तु जीव के लिए ऐसी वासना करना कदापि उचित नहीं, जिससे उसे जन्म-मृत्यु के चक्कर में बारम्बार फँसना पड़े। उसे तो भगवान के श्रीचरणकमलों में केवल शुद्धा भक्ति और शुद्ध ज्ञान के लिए ही प्रार्थना करनी चाहिए। तभी वह संसार के बन्धनों को तोड़कर भगवान की कृपा से मुक्त हो सकता है। संसार की जिस किसी वस्तु के लिए वासना की जायगी, उससे जीव को दुःख-कष्ट मिलना अवश्यम्भावी है। परन्तु जो लोग सदा भगवान, उनके भक्त और उनके गुणानुवाद में ही अपना समय व्यतीत करते हैं, उनके तीनों ताप अन्त में दूर हो जाते हैं।"

सिद्धि-चमत्कार के सम्बन्ध में वे कहते, "जब साधक में सच्ची साधुता आती है, तब शक्ति, ऋद्धि, सिद्धि आदि उसे प्रलोभित करने आती हैं; किन्तु जैसे स्वच्छ स्फटिक में सभी

वस्तुओं का प्रतिविम्ब दिखाई देता है, पर वह स्फटिक सभी उपाधियों से निर्लिप्त रहता है, उसी प्रकार सच्चे साधु के मन में इस संसार की सभी वस्तुओं का केवल प्रतिविम्ब ही पड़ता है—उसके मन में किसी प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न नहीं होते। पर यदि साधक का मन उधर चला जाय, तव तो उसके आदर्श से च्युत होकर पथ-भ्रष्ट हो जाने की आशंका रहती है।"

किसी के मन में कोई शंका उत्पन्न होने पर, नागमहाशय उसके प्रश्न करने के पूर्व ही उसका समाधान कर देते। कौन कितनी उच्च दशा को प्राप्त कर सकता है, किसका क्या मनोभाव है—ये सव वातें वे मुँह देखते ही ताड़ लेते। विभिन्न लोगों के सम्बन्ध में उनकी कितनी ही वातें सच निकली हैं। कोई उनके दर्शन के लिए देवभोग आने के लिए रवाना हो, तो उसके पहुँचने के पहले ही नागमहाशय अपनी पत्नी से कहते, "आज अमुक-अमुक आ रहे हैं, अतः मुझे अभी वाजार जाना चाहिए।" वे यदि किसी की याद करते, तो वह स्वयं उनके पास आ जाता।

मेरे एक सम्वन्धी श्री अश्विनीकुमार चक्रवर्ती एक समय मेरे साथ नागमहाशय के दर्शन करने गए। अश्विनीवावू को उदर-शूल की वीमारी थी, जिसके कारण वे प्रतिदिन सन्ध्या से लेकर सवेरे तक अचेत-से पड़े रहते। देवभोग जाते-जाते जैसे-जैसे सन्ध्या समीप आने लगी, वैसे-ही-वैसे मुझे उनके सम्बन्ध में अधिकाधिक चिन्ता होने लगी कि कहीं उनकी पीड़ा अव आरम्भ न हो जाय। पर ईश्वर की दया से मार्ग निर्विघ्न कट गया। अश्विनीवावू मुझे ढाढ़स वंधाते हुए वोले, "पीड़ा शुरू होने का समय निकल गया।" वे पांच महीनों से रात में पानी तक नहीं पी सकते थे, पर उस दिन रात में उन्होंने भर-पेट खाया, तो

भी उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। हम लोग देवभोग में तीन दिन रहे, पर किसी दिन उन्हें पेट-दर्द नहीं हुआ। अश्विनीबाबू कहते, "ऐसे महापुरुष के शरीर की हवा मेरे शरीर पर लगने से ही मेरे जन्म-जन्मान्तर के पापों का फलरूप यह व्याधि नष्ट हो गई! यदि मैं उसी समय से उनका आश्रय ग्रहण करता, तो मेरा नर-जन्म सार्थक हो जाता!"

एक समय देवभोग की एक विधवा ब्राह्मणी के लड़के को हैजा हो गया। उसकी माँ उसे मरणासन्न अवस्था में नागमहाशय के घर में डालकर चली गई। ईश्वर की दया से वह बालक अच्छा हो गया। सुरेशबाबू ने एक समय इस सम्बन्ध में नागमहाशय से पूछा, तो उन्होंने कहा था, "हाँ, वह लड़का अच्छा हो तो गया था, पर उस सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने का नहीं है।"

एक बार चैत्र मास में नागमहाशय के घर के उत्तर ओर चौधुरीबाबू के यहाँ आग लग गई। उस समय दुर्भाग्यवश हवा भी चल रही थी, जिससे देखते-ही-देखते आग भड़क उठी। चौधुरीबाबू के मकान से नागमहाशय का घर लगभग पचीस-तीस हाथ के अन्तर पर था। नागमहाशय के छप्पर पर आग की चिनगारियाँ आ-आकर गिरने लगीं। आग बुझाने के लिए मुहल्ले के सब लोग दौड़ पड़े—चारों ओर हल्ला मच गया। पर नागमहाशय अविचलित भाव से अग्नि के सम्मुख हाथ जोड़े खड़े रहे। उनकी पत्नी भयभीत होकर घर से कपड़ा-गद्दी आदि बाहर निकालने लगीं। यह देख नागमहाशय बोले, "अब भी इतना अविश्वास! यह सब कपड़ा-गुदड़ी लेकर क्या होगा! साक्षात् ब्रह्मा आज घर के समीप आए हैं। उनकी पूजा करना तो दूर रहा, तुम

यह सब कपड़ा-गुदड़ी लेकर ही व्यस्त हो गई !" फिर "जय रामकृष्ण ! जय रामकृष्ण !" कहते-कहते वे ताली पीटते हुए घर के आँगन में नृत्य करने लगे। तत्पश्चात् बोले, "कृष्ण तारे उसे कौन मारे, कृष्ण मारे उसे कौन तारे !" चौधुरीबाबू का घर जलकर राख हो गया, पर नागमहाशय के घर का एक तिनका तक न जला !

एक साल अर्द्धोदय पर्व पड़ा। उक्त पर्व पड़ने के तीन-चार दिन पहले नागमहाशय कलकत्ते से देवभोग लौट आए। उनको ऐसे समय घर आते देख दीनदयाल बोले, "ऐसा पुण्य पर्व पड़ा है, कितने लोग अपना सब कुछ छोड़-छाड़कर गंगा-स्नान करने जा रहे हैं, और तू ठहरा कि गंगा-तीर छोड़कर ऐसे समय घर चला आया ! तेरे धर्म-कर्म का मर्म तो मैं कुछ भी नहीं समझ सका ! अब भी तीन-चार दिन बाकी हैं, चल, मुझे भागीरथी के तीर पर ले चल।" नागमहाशय ने कहा, "यदि मनुष्य में सच्चा प्रेम रहे, तो गंगामाई उसके घर पर ही आकर दर्शन दे देती हैं, उसको और कहीं जाना नहीं पड़ता।" धीरे-धीरे गंगा-स्नान का दिन आ गया। श्रीमती हरकामिनी, श्रीयुत कैलास वसु आदि नागमहाशय के भक्तगण उस दिन देवभोग में ही थे। ठीक पर्व के समय हरकामिनी ने देखा कि नागमहाशय के घर के अहाते की आग्नेय दिशा में आँगन फोड़कर पानी का एक स्रोत बड़े वेग से ऊपर उठ रहा है ! धीरे-धीरे पानी झर-झर बहने लगा और पूरा आँगन पानी से भर गया। नाग-महाशय घर के भीतर थे। कोलाहल सुनकर वे बाहर आए और सारा दृश्य देखते ही स्रोत के सम्मुख "जय माता पतित-पावनी, जय मैया भागीरथी" कहते हुए साष्टांग प्रणाम करने

लगे। तत्पश्चात् अंजलि में वह जल लेकर सिर पर लगाते हुए पुनः प्रणाम करके वे उस स्थान से चले गए। फिर घर के सब लोगों ने उसमें स्नान करना आरम्भ किया। यह बात हवा की तरह गाँव-भर में फैल गई। दल-के-दल लोग नागमहाशय के यहाँ आने लगे और उस स्रोत में स्नान करने लगे। "जय गंगे, जय जय भागीरथी" की ध्वनि से नागमहाशय का आँगन गूँज उठा। लगभग एक घण्टे बाद जल का वेग कम हो गया; धीरे-धीरे आँगन का पानी भी घट गया। देवभोग में आज भी ऐसे लोग विद्यमान हैं, जो एक स्वर से इस घटना की साक्षी देते हैं। श्रीमती हरकामिनी बहुत दिनों से गुल्म रोग से पीड़ित थीं। इस पानी में स्नान करने से उनका वह रोग पूर्ण रूप से दूर हो गया। पर नागमहाशय ने जीवन-भर इस घटना का उल्लेख नहीं किया। यदि कोई इस सम्बन्ध में उनसे कोई बात पूछता, तो वे कहते, "हाय, हाय, लोग तिल का ताड़ कर लेते हैं!" स्वामी विवेकानन्द ने इस घटना को सुनकर कहा था, "नागमहाशय-जैसे महापुरुष की इच्छा से ऐसा होना कोई असम्भव कार्य नहीं। इन लोगों की अमोघ इच्छा-शक्ति से जीवों का उद्धार तक हो सकता है!"

जीवन की प्रत्येक घटना में नागमहाशय श्रीरामकृष्ण देव का मंगलमय हाथ देख पाते थे। एक रात मैं उनके यहाँ सोया हुआ था, कुछ आवाज से मेरी नींद टूट गई। मुझे नागमहाशय के गले की आवाज सुन पड़ी। वे रसोई-घर में सोते थे। मैं झटपट उठकर उधर गया, तो सुना कि एक बिल्ली ऊपर से उनके मुँह पर कूद गई। उनकी पत्नी ने तुरत दिया जलाया। देखा, उनकी बाईं आँख की पुतली में बिल्ली का नख लगने से

कुछ चोट आ गई है। यह देख उनकी पत्नी रोने लगीं। नागमहाशय बोले, "अरे, वह कुछ नहीं है, विशेष कोई चोट नहीं लगी।" फिर मेरी ओर देखकर बोले, "इस क्षुद्र देह के सम्बन्ध में क्यों सोचते हैं। प्रभु रामकृष्ण की इच्छा से ही यह सब हुआ। वे ही बिल्ली के रूप में आकर मेरे पूर्व जन्मों के पाप की सजा दे गए। यह सब तो प्रभु रामकृष्ण की दया ही है!" वे सारे संसार को रामकृष्णमय देखते थे। हम लोगों के बहुत आग्रह करने पर तब कहीं उन्होंने दो-चार दिन उस आँख पर पानी की पट्टी लगाई। भगवान की दया से उसी से उनकी आँख अच्छी हो गई।

एक समय जब वे कलकत्ते में थे, उनके दोनों हाथों में बड़ी पीड़ा होने लगी, जिससे वे अपने हाथों को हिला-डुला न सकते थे। हाथ जोड़े रहने से उन्हें काफी आराम मालूम होता था, अन्यथा भयानक पीड़ा होती थी। इस सम्बन्ध में वे कहते, "सदैव हाथ जोड़े रहने की शिक्षा देने के लिए ही श्रीरामकृष्णदेव ने मुझे इस व्याधि से पीड़ित किया था।"

जब उदर-शूल से वे बहुत व्याकुल हो जाते थे, तब भी उन्हें यह कहते सुना है, "जय प्रभु रामकृष्ण! तुम्हारी जय हो! यह सूखी ठठरी जब तुम्हारी सेवा में न लग सकी, तो यह व्याधि देकर तुमने इसे उचित ही दण्ड दिया है! यह शूल की पीड़ा देकर तुम दया करके इससे अपना स्मरण करवा ले रहे हो! धन्य हो शूल-पीड़ा, सचमुच तुम धन्य हो—प्रभु रामकृष्ण का स्मरण तो करा दे रही हो! जय प्रभु! धन्य हो तुम और धन्य है तुम्हारी कृपा! गुरुकृपा ही केवलम्! गुरुकृपा ही केवलम्! यदि तुम स्वयं होकर कृपा न करो, तो जीव के लिए अन्य कोई उपाय नहीं है।"

नागमहाशय में दूसरों को उपदेश देने का भाव बिलकुल नहीं था। यदि कोई उनसे कोई विषय समझ लेना चाहता, तो वे कहते, "कोई क्या किसी को समझा सकता है ? समय आने पर प्रभु रामकृष्ण की कृपा से जीव के अन्तश्चक्षु अपने आप खुल जाते हैं और तब 'जित देखूँ तित श्याम' की अवस्था हो जाती है—वह जिस ओर देखता है, सभी एक नए रंग में रँगे दिखाई पड़ते हैं।" परन्तु जब वे देखते कि उपदेश न पाने से कोई जिज्ञासु हताश हो गया है, तो तुरन्त उसे आश्वासन देते हुए कहते, "अन्तिम जन्म न हो, तो श्रीरामकृष्ण-नाम में विश्वास नहीं होता !" पुनः कहते, "भगवान में यदि ठीक-ठीक भक्ति-विश्वास हो, तो पैर कभी बेताल (कुपथ) में नहीं पड़ते। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ उसे हस्तगत हो जाते हैं।"

गिरीशबाबू कहते, "नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) और नागमहाशय को बाँधने जाकर महामाया बड़ी विपत्ति में पड़ गई। वह नरेन्द्र को जितना बाँधती, नरेन्द्र उतने ही बड़े हो जाते और माया की रस्सी छोटी पड़ जाती। अन्त में नरेन्द्र इतने बड़े हो गए कि माया को अपना-सा मुँह लेकर लौट जाना पड़ा। नागमहाशय को भी महामाया ने बाँधना आरम्भ किया। पर वह जितना बाँधने लगी, नागमहाशय उतने ही छोटे होने लगे, और अन्त में इतने छोटे हो गए कि माया-जाल में से निकलकर बाहर आ गए !"

सप्तम अध्याय

भक्तों के साथ

नागमहाशय से मन्त्र लेकर कोई उनका शिष्य हुआ हो ऐसा कहीं सुनने में नहीं आया है। शास्त्रोक्त विधि-नियमों का वे कभी उल्लंघन नहीं करते थे, और किसी को वैसा करते देख वे अत्यन्त दुःखित होते, यहाँ तक कि विरक्त हो जाते। शास्त्रों का नियम है कि शूद्रों को मन्त्र देने का अधिकार नहीं। उन्होंने इस नियम को कभी नहीं तोड़ा। उनकी कृपा से अनेकों के हृदय में धार्मिक भाव जगा है, कई बिगड़े लोग सन्मार्ग पर लगे हैं, परन्तु गुरु-शिष्य का भाव उनके मन में कभी स्थान नहीं पा सका। कोई उन्हें यदि 'गुरु' नाम से सम्बोधित करता, तो वे सिर धुनने लगते। कहते, "मैं ठहरा क्षुद्र शूद्र, मैं भला क्या जानूँ? आप लोग मुझे अपनी पद-धूलि देकर पवित्र करने आए हैं। प्रभु रामकृष्ण की दया है, जो आप लोगों के दर्शन कर सका।"

नागमहाशय का एक ब्राह्मण भक्त उनसे दीक्षा लेने के लिए बहुत आग्रह करने लगा। इस पर उन्होंने कहा, "एक तो आप ब्राह्मण हैं, और उस पर फिर शिक्षित हैं; अतः यह संकल्प सर्वथा त्याग देना ही आपको उचित है। समाज-मर्यादा और शास्त्रादेश न मानने के कारण ही लोगों की ऐसी दुर्दशा होती जा रही है। श्रीरामकृष्ण देव के आदेश से मुझे यह जीवन यथार्थ गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए बिता देना होगा, उसमें एक रत्ती भर भी इधर-उधर करने की मुझमें शक्ति नहीं।" यह सुनकर भक्त उदास हो गया। यह देख उन्होंने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा, "चिन्ता न कीजिए, साक्षात् सदाशिव आपके

मन्त्रदाता गुरु होंगे।" कुछ दिनों बाद नागमहाशय ने सुना कि उस भक्त ने स्वामी विवेकानन्दजी से दीक्षा ली है। यह जानकर वे परम आनन्दित हुए और बोले, "वर्तमान काल में प्रभु रामकृष्ण के संन्यासी भक्त ही संसार के एकमात्र दीक्षा-गुरु हैं। उन लोगों से जो कोई दीक्षा ग्रहण करेगा, वह धन्य हो जायगा!"

यद्यपि नागमहाशय के कोई मन्त्र-शिष्य नहीं था, तो भी उनका भक्तसमुदाय बहुत बड़ा था। गिरीशबाबू कहते, "नागमहाशय अपने भक्तों पर स्नेहमयी माता की भाँति सर्व क्षण सतर्क दृष्टि रखते थे।" चाहे कोई दूर हो या समीप, आँखों के सामने हो या आँखों की ओट में, उनकी वह स्नेह-दृष्टि सब पर समान रहती थी। एक समय एक भक्त उनके दर्शनार्थ देवभोग आने के लिए अत्यन्त व्याकुल हो गया। वह ढाका में कालेज में पढ़ता था। ढाका से रेलगाड़ी में चढ़कर जब वह नारायणगंज में उतरा, तब सन्ध्या हो चुकी थी। वर्षा का समय था—जिधर देखो, उधर ही पानी—सर्वत्र पानी-ही-पानी! एक तो सन्ध्या का अन्धकार, उस पर आकाश में सघन काले बादल! मूसलाधार पानी बरस रहा था। नारायणगंज के श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर के पास से देवभोग जाने का रास्ता था। वर्षाकाल में नाव द्वारा जाना पड़ता था। भक्त ने देखा, कहीं एक भी नाव नहीं है। अब क्या किया जाय? अन्त में निरुपाय हो उसने मन में ठान लिया कि वह तैरकर ही उस अगाध जलराशि को पार करेगा। नागमहाशय का स्मरण कर वह पानी में कूद पड़ा। तैरते-तैरते रात को लगभग नौ बजे थकावट से चूर, उसकी बेसुध-सी देह नागमहाशय के घर के उत्तर ओर के बगीचे में आ लगी। तब भी जोर से वर्षा हो रही थी। भक्त ने देखा कि

नागमहाशय वहीं पर खड़े उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। भक्त को देखते ही नागमहाशय वोले, "हाय ! हाय ! यह आपने क्या किया ? कितने जहरीले साँप पानी में वहते रहते हैं, फिर उस पर ऐसी विकट वर्षा ! ऐसे समय क्या आना चाहिए ?" भक्त कुछ भी उत्तर न दे नागमहाशय के पीछे-पीछे चलने लगा। घर में पहुँचते ही उनकी पत्नी ने उसको सूखा वस्त्र पहनने को दिया और साथ ही स्नेहपूर्ण भर्त्सना भी की। उस प्रेमपूर्ण उलाहना को सुनकर भक्त रोते-रोते वोला, "इनको (नागमहाशय को) विना देखे रहना मेरे लिए अव असह्य हो गया है।" वह भक्त प्रत्येक शनिवार को कालेज की छुट्टी होते ही देवभोग चला आता। नागमहाशय की पत्नी उसके लिए रसोई वनाने की तैयारी करने लगी। उन्होंने देखा कि घर में सूखी लकड़ी नहीं है। नागमहाशय को यह वात मालूम होते ही वे घर का एक खम्भा ही काटने लगे। भक्त ने वहुत मना किया, पर वे न माने। उनकी पत्नी ने भी उनको ऐसा करने से रोका। इस पर वे खम्भा काटते हुए वोले, "जो मुझे देखने के लिए जान हथेली पर रखकर मौत के मुँह में से तैरते हुए आए हैं, उनके लिए क्या मैं एक सामान्य घर की माया भी नहीं छोड़ सकता ! यदि अपने प्राण देकर भी मैं इनकी कुछ सेवा कर सका, तो मेरा यह देह-धारण सार्थक हो जायगा !" भगिनी निवेदिता के "'The Master as I saw Him" नामक ग्रन्थ में इस घटना का विस्तृत विवरण है। वह भक्त कहता, "नागमहाशय की अपार कृपा से ही उस दिन मेरी रक्षा हो सकी, इसमें सन्देह नहीं।"

एक अन्य समय की वात है—नागमहाशय ने और एक वार इसी भक्त की आत्महत्यारूप महापाप से रक्षा की थी। उन

समय यह भक्त कलकत्ते में छात्रालय में रहकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के कालेज में वी. ए. में पढ़ता था। यह घटना उसके ही शव्दों में नीचे दी जाती है:—

"एक रात को मैं छात्रावास की छत पर अकेला टहल रहा था। सब ओर शान्ति छाई हुई थी। चन्द्रमा का शुभ्र प्रकाश फैला हुआ था। परन्तु मेरे हृदय में वड़ी अशान्ति थी। वहुत दिनों से नागमहाशय के दर्शन नहीं हुए थे। देवभोग की स्मृति भी रह-रहकर मेरे मानस-पटल पर उदित हो रही थी। इससे मेरा हृदय अत्यन्त व्याकुल हो गया। उस समय मेरा श्रीरामकृष्ण देव के भक्तों के साथ परिचय नहीं हुआ था, अतः ऐसी सुविधा भी नहीं थी कि उनके साथ नागमहाशय की चर्चा करके अपना हृदय हलका कर आता। नागमहाशय प्रति वर्ष शारदीया पूजा के पहले एक वार पूजा का सामान खरीदने कल-कत्ता आते। किन्तु तव तक उनकी प्रतीक्षा करने का धीरज मुझमें न रहा। मन में केवल यही चलने लगा, 'हाय! मैंने ऐसा महापुरुष पाकर भी खो दिया; तो फिर जीवित रहने का ही क्या प्रयोजन है!' इस प्रकार सोचते-सोचते मन इतना व्याकुल हो गया कि छत से कूदकर आत्महत्या कर लेने की इच्छा होने लगी। यह निश्चय कर मैं कूदने ही वाला था कि मानो किसी ने मेरे कानों में कह दिया, 'कल सवेरे ही नाग-महाशय से भेंट होगी!' मैं सिहर उठा। झटपट छत से नीचे उतरकर कमरे में आया और विस्तर पर लेट रहा। कुछ देर में मुझे नींद लग गई। सवेरे उठकर मैं मुँह धोने जा रहा था कि मैंने सुना—कोई मुझे पुकार रहा है। तुरन्त जाकर दरवाजा खोलकर देखता हूँ कि नागमहाशय हाथ में कपड़े की एक गठरी

लिए हुए खड़े हैं ! मुझे देखते ही वे आकुल-कण्ठ से बोले, 'आप यह क्या करने जा रहे थे ! मुझे बड़ी चिन्ता हो गई थी, इसलिए तुरन्त कलकत्ता आना पड़ा। आपको डर किस बात का ? चिन्ता भी भला किस बात की ? जब प्रभु रामकृष्ण के राज्य में आप आए हैं, तब चिन्ता करने का अब कोई कारण नहीं रह गया ! आत्महत्या तो महापाप है !' फिर बोले, 'अब तक आप नदी-नाले में भटक रहे थे, पर अब तो सागर में आ पहुँचे हैं—श्रीरामकृष्ण-लीला के महासागर में !' बाद में एक दिन वे मुझे बेलुड़ मठ ले गए और वहाँ के संन्यासियों से बोले, 'ये बाबू बड़े चंचल हैं, इन्हें आप लोग कृपा करके अपने चरणों में आश्रय दें। इनकी मति-गति बड़ी अच्छी है। जिससे प्रभु रामकृष्ण इन पर कृपा करें, उस ओर ध्यान रखेंगे।' "

जो सब भक्त नागमहाशय के पास नित्य आते-जाते थे, उन लोगों से वे कहते, "आप लोग तो अपने से भी अपने हैं। यदि अपना यह जीवन देकर भी मैं आप लोगों की सेवा कर सकूँ, तो वह मेरा अहोभाग्य है। इस सूखी ठठरी से और क्या होगा !"

भक्तों में कौन बड़ा है और कौन छोटा—यह बताया नहीं जा सकता। फिर, सब भक्तों के साथ लेखक का परिचय भी नहीं है तथा अनेकों के नाम तक उसे विदित नहीं। अतः अज्ञानवश इस ग्रन्थ में जिन लोगों का उल्लेख न हो सका हो, वे उदारतापूर्वक लेखक को क्षमा करें।

नागमहाशय के भक्तों में उनकी पत्नी का ही उल्लेख सर्वप्रथम करना उचित है, क्योंकि भक्त-प्रसंग में उनका स्थान सबसे पहला है। वे सबसे पहले बड़े सवेरे ही उठ जातीं और गृह-कार्य

में लग जातीं। सारा काम निपटाकर फिर स्नान के वाद वे पूजा करने वैठ जातीं। तत्पश्चात् रसोई वनाकर अतिथि-अभ्यागतों को भोजन कराने के वाद पहले अपने स्वामी को भोजन करातीं और फिर स्वयं थोड़ा-वहुत प्रसाद पातीं। घर-गृहस्थी का सारा कार्य वे अकेली ही करतीं, यहाँ तक कि अपनी वहिन हर-कामिनी को भी किसी काम में हाथ लगाने नहीं देती थीं। नाग-महाशय के जो-जो भक्त अव भी देवभोग जाते हैं, वे सभी एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि नागमहाशय की पत्नी के सेवा-यत्न, उद्योग, सहनशीलता आदि गुणों में एक रत्ती भर की भी कमी नहीं हुई है। पहले के ही समान वे आज भी मानो दस हाथों से कार्य करती रहती हैं। अपने स्वामी के भक्तों पर वे अपनी ही सन्तान के समान स्नेह रखती हैं और भक्तगण भी उनके प्रति मातृवत् श्रद्धा-भक्ति रखते हैं। नागमहाशय की पुण्यस्मृति और उनकी पवित्र भस्म को अपने वक्षःस्थल पर धारण कर देवभोग आज एक पुण्य तीर्थस्थान वन गया है। प्रातःस्मरणीय नाग-महाशय की समाधि के दर्शन करने वहाँ वहुत से लोगों का समागम होता है। उनमें से जो लोग नागमहाशय के जीवित रहते उनके दर्शन करने वहाँ गए थे, वे कहते हैं कि सेवा-यत्न और अतिथि-सत्कार से उन महापुरुष का पुण्य प्रभाव देवभोग में अभी तक वना हुआ है।

नागमहाशय की पत्नी के लिए नागमहाशय ही एकमात्र इष्ट-देवता थे—उनका अन्य कोई इष्ट न पहले कभी था और न अभी है। नागमहाशय के चित्र की पूजा किए विना वे मुँह में पानी तक नहीं डालती हैं। एक वर्ष महाष्टमी-पूजा के दिन उनकी प्रवल इच्छा हुई थी कि स्वामी के चरणों में पुष्पांजलि दें।

जव उन्होंने यह इच्छा प्रकट की, तो नागमहाशय विरक्त हो गए। परन्तु एक समय जब वे घर के कोने में अन्यमनस्क भाव से खड़े थे, इतने में अवसर देखकर उनकी पत्नी ने उनके चरणों में पुष्पांजलि चढ़ा ही दी। इस पर नागमहाशय ने कहा, "जो जिसकी पूजा करता है, वह स्वयं क्या उससे सेवा-पूजा ग्रहण करता है ?" उनकी पत्नी ने चरणों पर अर्पित किए गए उन फूलों को इकट्ठा कर एक सोने की तावीज में भर लिया और उस तावीज को गले में पहन लिया।

हरप्रसन्नवावू जब पहले-पहल नागमहाशय के दर्शन करने गए, तब उनकी पत्नी को देखकर उनके मन में उठा था, "ये तो साधु हैं—फिर इनकी स्त्री कैसी ?" नागमहाशय हरप्रसन्न के मन की वात भांप गए और बोले, "क्यों भला ? इसमें क्या दोष है ? वह तो माता अन्नपूर्णा है—खाने-पीने की सारी व्यवस्था कर देती है।" सचमुच, नागमहाशय की पत्नी स्नेह, दया, त्याग, तितिक्षा, परोपकार आदि गुणों की साकार प्रतिमा हैं ! उन्हें देखकर ऐसा लगता है, मानो तपस्या ही मानवी रूप धारण कर आदर्श नारी के रूप में विराज रही है !

नागमहाशय के जीवन-काल में जो-जो भक्त नियमित रूप से प्रति शनिवार को देवभोग जाते, उन लोगों के लिए नाग-महाशय की पत्नी नाना प्रकार के मिष्टान्न तैयार करके रखतीं। नागमहाशय के घर में वर्णाश्रम धर्म का एक रत्ती भर भी व्यतिक्रम नहीं होता था। ब्राह्मण-भक्तों को अपने हाथ से रसोई बनानी पड़ती। उनके भोजन के समय नागमहाशय हाथ जोड़े हुए आंगन के एक किनारे खड़े रहते और उनकी पत्नी समीप रहकर आग्रह और स्नेहपूर्वक खिलातीं। देवभोग जाने पर किसी

को ऐसा नहीं लगता था कि वह एक साधु के आश्रम में आया है। प्रत्युत सभी को यही मालूम होता कि अपने माता-पिता के पास आए हैं। नागमहाशय के स्वर्गवासी होने के पश्चात् एक समय पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्दजी अपनी पहले की इच्छानुसार देवभोग आए। स्वामीजी आनेवाले हैं जानकर नागमहाशय उनके शौच आदि के लिए उपयुक्त स्थान की व्यवस्था कर गए थे। पर स्वामीजी ने कहा था कि नागमहाशय के घर जाने पर वे गाँव की प्रथानुसार ही शौच, स्नान, आहार आदि करेंगे। अतः स्वामीजी ने देवभोग आने पर ठीक वैसा ही किया। देवभोग में एक दिन रहकर वे ढाका चले गए। जाने के समय नागमहाशय की पत्नी ने उन्हें एक वस्त्र भेंट किया था। स्वामीजी ने उस वस्त्र को सिर में लपेटकर नागमहाशय का गुणगान करते हुए देवभोग से प्रस्थान किया था।

इस प्रदेश (पूर्व बंग) में प्रचार-कार्य के लिए आने के पूर्व स्वामीजी ने नागमहाशय के एक भक्त से कहा था, "उस ओर जाकर भाषण आदि देने की इच्छा नहीं है। फिर, उस सबकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। जो प्रदेश नागमहाशय की आभा से पूर्ण है, मैं वहाँ जाकर अधिक क्या बोलूँगा!" उस पर भक्त ने कहा, "नागमहाशय तो बड़े गुप्त भाव से रहते थे, साधारण लोगों को उन्होंने कभी कोई उपदेश नहीं दिया।" यह सुनकर स्वामीजी बोले, "हो सकता है, मुँह से कुछ न कहा हो! पर नागमहाशय-जैसे महापुरुषों की विचार-तरंगें देश की विचार-धारा की गति मोड़ देती हैं।"

नागमहाशय की पत्नी की छोटी बहिन हरकामिनी नागमहाशय को छोड़ और कोई देवता या धर्म नहीं मानती हैं।

उनकी भक्ति और सरलता देखकर सभी मुग्ध हो जाते हैं। वे अपने पति के साथ आजीवन अपने पिता के घर पर रहीं। नागमहाशय उनके प्रति पुत्रीवत् स्नेह रखते थे और उनको देखने के लिए कभी-कभी ससुराल चले जाया करते थे।

हरकामिनी के यहाँ प्रति वर्ष रटन्ती * पूजा होती थी; परन्तु नागमहाशय की उपस्थिति बिना प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती थी और पुरोहित भी पूजा के लिए नहीं बैठते थे। वे जानती थीं कि नागमहाशय की उपस्थिति से प्रतिमा में देवी आविर्भूत हो जाती हैं।

एक वर्ष हरकामिनी के बगीचे में केले का एक खासा बड़ा घेरा लगा। उन्होंने ठीक किया कि उसका अग्रभाग वे नागमहाशय को देंगी। पर उस समय नागमहाशय कलकत्ते में थे। इधर केले पकने लगे। नागमहाशय की पत्नी अपनी बहिन से घेरा काट लेने के लिए बारम्बार कहने लगीं। वे बोलीं, "उनको घर लौटते अभी एक महीना और लग जायगा।" पर हरकामिनी ने उनके कहने पर ध्यान नहीं दिया। अन्त में नागमहाशय की पत्नी ने आग्रह करके घेरा कटवा ही डाला। हरकामिनी ने झटपट उसमें के अच्छे-अच्छे केले चुनकर नागमहाशय के लिए रख लिए और बाकी के केले बाँट दिए। इस घटना के पन्द्रह दिन बाद नागमहाशय देवभोग लौटे। हरकामिनी उन्हीं केलों को लेकर उनके दर्शन करने आईं। पर आश्चर्य! केले तब भी सड़े नहीं थे! नागमहाशय उनकी श्रद्धा-भक्ति देखकर बड़े मुग्ध हो गए और उनमें से कुछ केले उन्होंने ग्रहण कर लिए। जिन भक्तों के लिए नागमहाशय ही एकमात्र शरण

* माघ-कृष्णा चतुर्दशी की पुण्यतिथि।

थे, उन लोगों की दी हुई चीजें वे बड़े आनन्द से ग्रहण कर लेते।

श्रीमती हरकामिनी सांसारिक कार्य के सम्वन्ध में विलकुल उदासीन थीं। रोग-शोक, सुख-दु:ख आदि से वे कभी विचलित नहीं होती थीं। नागमहाशय के भक्तों को वे अपने ही परिवार का समझतीं।

नागमहाशय अपनी सास के भक्ति-भाव की वड़ी प्रशंसा करते थे। एक समय वे कलकत्ता गईं और अपने दामाद के निवासस्थान पर ठहरीं। वे नित्य गंगा-स्नान करने जातीं और स्नान के पश्चात् तीर पर वैठकर मिट्टी का शिव वनाकर उसकी पूजा करतीं। एक दिन पूजा करते-करते उन्होंने देखा कि शिवलिंग का ऊपरी भाग फट गया है। किसी अज्ञात आशंका से उनका हृदय काँपने लगा। शिवलिंग का इस प्रकार फट जाना वड़ा अमंगलसूचक है, अतः वे गंगातट पर वैठकर व्याकुल हो रोने लगीं। दिन वीत गया, सन्ध्या होने लगी, पर वे घर न लौटीं—यह देख नागमहाशय उनकी खोज में निकले। गंगातट पर जाकर देखा—वे घाट पर अकेली वैठी रो रही हैं। उन्होंने दामाद को सारी घटना कह सुनाई। नागमहाशय उन्हें समझा-वुझाकर—आश्वासन देकर घर लाए। घर आकर वे रजाई ओढ़कर पड़ी रहीं। उस दिन उन्होंने मुँह में पानी तक न डाला। रात को उन्होंने एक स्वप्न देखा कि वृषभ पर वैठकर महादेव उनके सिरहाने पर खड़े हैं और उनसे कह रहे हैं, "तुम्हें अव और पूजा करने की कोई आवश्यकता नहीं, मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ।" यह स्वप्न देखने के वाद वृद्धा को फिर से नींद नहीं आई। सवेरे उठते ही उन्होंने अपने दामाद को स्वप्न की वात

वतलाई। वस उस समय से उनकी शिव-पूजा वन्द हो गई। यदि कोई इस सम्वन्ध में उनसे कुछ पूछता, तो वे कहतीं, "जव प्रत्यक्ष शिव ही मुझे दामाद के रूप में मिला है, तव भला और शिव-पूजा की क्या आवश्यकता?" वे अपने दामाद को दूर से नमस्कार करतीं और समीप आकर घूँघट काढ़कर वैठी रहतीं। अभी उनकी उम्र लगभग नव्वे वर्ष की है, अव वे केवल जप-ध्यान में ही दिन विताती हैं।

एक वार रटन्ती पूजा के समय में नागमहाशय के साथ उनके ससुराल गया। उस समय नागमहाशय की सास की माता भी जीवित थीं। मैंने उन्हें गीता पढ़कर सुनाई थी।

नागमहाशय विवाह के वाद पहले-पहले अपने ससुराल में खाना-पीना करते थे। पर जव से वे श्रीरामकृष्ण देव के आश्रय में आए, तव से वहाँ जल-ग्रहण करना वन्द कर दिया। इस कारण उनकी सास कभी-कभी खेद प्रकट किया करतीं। नागमहाशय के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् यदि कोई उनकी सास के पास उनका नाम उठाता, तो वे कहतीं, "हाय! मेरा शिव-दामाद लीला पूरी करके चला गया, और मैं पापिन अव भी वची हुई हूँ!"

नागमहाशय के पिता के श्राद्ध के समय जिस वृद्धा ब्राह्मणी ने उनकी पत्नी को पैसा उधार दिया था, वह भी उनकी एक परम भक्त थी। वह उनके पड़ोसी चौधुरीवावू की पुत्री थी। वह कान की कुछ वहरी थी। उसके पुत्र आदि कोई न था। अतः उसके हृदय का समस्त स्नेह नागमहाशय और उनकी पत्नी पर केन्द्रित हो गया था। वह नागमहाशय को 'दुर्गाचरण' के नाम से और उनकी पत्नी को 'वहू' कहकर पुकारती।

नागमहाशय उसे माता के समान मानते और संसार के प्रत्येक काम में उसकी सलाह लेते। उस वृद्धा को लोग कंजूस कहा करते थे, क्योंकि उसके पास कुछ संचित धन था। नागमहाशय के सांसारिक कष्ट को देखकर उसकी बड़ी इच्छा होती कि नागमहाशय को कुछ दान दूँ, पर उसकी वह इच्छा कभी पूरी न हो पाई। बहुत ही अड़चन पड़ने पर यदि नागमहाशय उससे कर्ज ले ही लेते, तो हाथ में पैसा आते ही उसका कर्ज चुका देते।

नागमहाशय के पास बहुत से लोग आया करते थे। इस कारण उनकी पत्नी को बहुत ही परिश्रम करना पड़ता था। यह देख वह ब्राह्मणी दुःखित होकर कहती, "हाय, हाय, मेरी बहू काम करते-करते मरी जा रही है!"

चौधुरीबाबू के घर के ऊपर से नागमहाशय के घर में आने का रास्ता था। इस रास्ते से किसी को नागमहाशय के घर जाते देखकर वह ब्राह्मणी कहती, "ये लोग साधु के दर्शन करने जा रहे हैं।" वह वृद्धा नागमहाशय को महापुरुष समझकर उनकी उसी प्रकार भक्ति करती थी।

नागमहाशय के स्त्री-भक्तों में श्रीयुत हरप्रसन्न की पत्नी मुख्य थीं। इन्हीं का पत्र मैंने प्रथम अध्याय में उद्‌धृत किया है। इनके सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था, "तेरे पूर्व बंगाल में मैंने बस यही एक नारी देखी—वह जैसी विदुषी है, वैसी ही भक्तिमती भी है।" नागमहाशय इनको 'माँ' कहा करते और पाँच वर्ष के बालक की भाँति उनके हाथ से खाद्य द्रव्य खा लिया करते।

कुमारटोली के पालबाबुओं की जन्मभूमि भोजेश्वर ग्राम में एक समय महामारी फैली। पालबाबू लोग नागमहाशय को

वहाँ ले गए। नागमहाशय के आगमन से महामारी शान्त हो गई। बाबू हरलाल पाल कहते हैं, "जब कभी हमारे गाँव में महामारी का प्रकोप होता, हम लोग नागमहाशय को वहाँ ले जाते और उनके वहाँ जाने से ही महामारी शान्त हो जाती!" इस बार नागमहाशय जब भोजेश्वर गए, तो वहाँ से हरप्रसन्न-बाबू की पत्नी को देखने के लिए वे उनके गाँव चले गए। हरप्रसन्नबाबू की पत्नी ने अब तक उनके दर्शन नहीं किए थे, केवल इतना ही सुना था कि मेरे पति एक साधु के पास जाते रहते हैं। नागमहाशय को देखते ही उनको लगा कि ये ही वे साधु हैं। नागमहाशय को कुछ खिलाने की उनकी बड़ी इच्छा हुई, पर उस समय उन्हें अशौच होने के कारण कोई उपाय न था। किन्तु नागमहाशय ने 'इसे अशौच है, इसके हाथ का अन्न कैसे खायँ', आदि विचार न कर उनके हाथ का अन्न परम तृप्ति सहित खाया। उनके शरीर पर फटे-पुराने कपड़े देख, नागमहाशय पालम्बाजार से लाल किनार की दो साड़ियाँ खरीद लाए और उनको दे आए। इस अन्नग्रहण की बात का उल्लेख करते हुए हरप्रसन्न बाबू ने मुझसे कहा था, "अरे भाई, हमारा भाग्य बड़ा अच्छा है; हम लोगों का उद्धार करने के लिए ही उन्होंने (नागमहाशय ने) नर-शरीर धारण किया था और उन्हीं की कृपा से हम लोग इसी जन्म में भव-सागर पार हो जायँगे।"

भोजेश्वर से लेखक की जन्मभूमि डेढ़ कोस की दूरी पर है। नागमहाशय जिस समय भोजेश्वर गए, तब मैं अपने गांव में ही था। नागमहाशय के आने का संवाद पाकर मैं उनके दर्शन करने भोजेश्वर गया। मुझे देखकर उन्होंने कहा, "क्या

करूँ, ये (पाल बाबू) लोग अन्न देते हैं, इनकी बात माननी ही पड़ती है ! इसी लिए आना पड़ा !" अपराह्न काल में मैं उन्हें अपने गाँव ले गया। वहाँ हम लोगों की कुलस्वामिनी कात्यायनी देवी को देखकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। मेरे पिता को उन्होंने प्रणाम किया। यहाँ भी मेरी पत्नी के हाथ का अन्न खाकर उन्होंने हम लोगों को कृतार्थ किया। दूसरे दिन उनके साथ मैं भोजेश्वर वापस जा रहा था कि रास्ते में किसी तर्करत्न पदवीधारी पण्डित से भेंट हो गई। उसने मुझसे कहा, "इस पागल के साथ कहाँ जा रहे हो ?" मैंने उत्तर दिया, "हाँ, ये पागल तो हैं; पर हम और आप जोरू-जायदाद के पीछे पागल हैं और ये ईश्वर-प्रेम में पागल हैं—बस इतना ही अन्तर है !"

हरप्रसन्नबाबू की पत्नी बीच-बीच में देवभोग में आकर रहती थीं। जब वे वहाँ से ढाका जातीं, तब नागमहाशय उन्हें बहुत दूर तक पहुँचा आते। एक समय की बात है। नागमहाशय इसी प्रकार उन्हें पहुँचाने जा रहे थे कि मार्ग में श्रीलक्ष्मी-नारायणजी के मन्दिर के पास एक बूढ़ी वैष्णवी के साथ उनकी भेंट हो गई। वैष्णवी भिक्षा माँगने देवभोग जाया करती थी, इसलिए वह कई लोगों को जानती थी। हरप्रसन्नबाबू की पत्नी की ओर संकेत करके उसने नागमहाशय से पूछा, "यह तुम्हारी कौन है ?" नागमहाशय ने उत्तर दिया, "माँ।" वैष्णवी जानती थी कि नागमहाशय मातृहीन हैं, अतः उसने फिर कहा, "तुम्हारी माँ की मृत्यु हुए तो बहुत साल हो गए, यह फिर तुम्हारी कैसी माँ !" नागमहाशय बोले, "यह मेरी सचमुच की माँ है—सचमुच की माँ !" वैष्णवी समझ गई, बोली, "हाँ, समझी, यह तुम्हारी सचमुच की माँ है ! नहीं तो,

बाबा, क्या यों ही साधु कहकर तुम्हारी कीर्ति सर्वत्र फैल गई है! जीओ बाबा, सौ बरस जीओ और देश का मुँह उजागर करो।"

हरप्रसन्नबाबू की पत्नी के समान स्त्रियाँ क्वचित् ही देखने में आती हैं। मैंने सुना था कि वे बहुत सुन्दर गाती हैं। देवभोग में जिस दिन उनसे मेरा प्रथम परिचय हुआ, उस दिन मैंने उनसे एक गाना सुनाने का अनुरोध किया। उन्होंने बिना किसी हिचक के गाया, "मन केनो मायेर चरण छाड़ा" (मन, क्यों माँ के चरण छोड़ना)। एक तो उनका सुन्दर कण्ठ-स्वर, उस पर उनकी वह तन्मयता! मैं तो मुग्ध हो गया—विभोर होकर सुनने लगा। नागमहाशय बोल उठे, "माँ जगदम्बा अपना नाम-गान स्वयं कर रही हैं!—'आपनि सुखे आपनि नाचो, आपनि देओ मा करतालि'।"

नागमहाशय हरप्रसन्न की पत्नी के सम्बन्ध में कहते, "ये विद्यामाया हैं—देवी सरस्वती के अंश से इनका जन्म हुआ है।" इस मातृतुल्य मानसपुत्री को नागमहाशय ने अपने बाल्य-जीवन की अनेक बातें बतलाई थीं। उनमें से कुछ हम प्रथम अध्याय में पाठकों के समक्ष रख चुके हैं। हरप्रसन्न बाबू, उनकी पत्नी और पुत्र सभी नागमहाशय के परम भक्त थे।

नागमहाशय की माता त्रिपुरासुन्दरी की एक ताई थीं, जिनका नाम माधवी देवी था। नागमहाशय उनको 'दादी' कहा करते। ढाका के समीप किसी गाँव में उनका निवासस्थान था। पूर्व बंगाल में उनका नाम आज भी बहुतों के मुख से सुनने में आता है। एक बार वे कलकत्ते गईं और नागमहाशय के निवास-स्थान पर तीन-चार दिन ठहरीं। उस समय वे केवल दूध और

फल पर रहती थीं। वे आजन्म ब्रह्मचारिणी रहीं; साधन-भजन और अतिथि-सेवा के अतिरिक्त उन्हें अन्य कोई कार्य नहीं था। नागमहाशय कहते, "धार्मिकता में इतनी उन्नत स्त्री मैंने और कहीं नहीं देखी। उनमें जैसी त्याग की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी, वैसा ही उनमें सेवा-भाव भी था।" नागमहाशय समय-समय पर उन्हें देखने उनके गाँव जाते रहते, और वे भी नाग-महाशय को देखने कभी-कभी देवभोग आया करतीं। वे नाग-महाशय को "सागर का रत्न" कहा करतीं। श्रीयुत हरप्रसन्न मजुमदार ने उनका विस्तृत चरित्र "उद्बोधन" मासिक पत्र में प्रकाशित किया है।

नागमहाशय की गृहस्थ स्त्री-भक्तों में से मैं जिन-जिनको जानता हूँ, अथवा माधवी देवी की भाँति जिन-जिनका विवरण मुझे विश्वस्त सूत्रों से प्राप्त हुआ है, केवल उन्हीं लोगों का मैंने यहाँ पर यत्किंचित् उल्लेख किया है।

देवभोग के समीप काशीपुर ग्राम में एक मुसलमान रहता था। नागमहाशय पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी। नागमहाशय कहते, "वह मुसलमान है तो क्या हुआ? उसके समान सात्त्विक भाव तो बहुतसे ब्राह्मणों तक में नहीं दिखाई देता।" इस मुसलमान भक्त की आयु लगभग सत्तर वर्ष की थी। तरुण अवस्था में स्त्री-वियोग होने पर भी उसने दूसरा विवाह नहीं किया था। पुत्र पर संसार का सारा भार सौंपकर वह निश्चिन्त मन से भगवान का भजन-चिन्तन करता था। वह नित्य नागमहाशय के दर्शन करने आता और उन्हें दूर से ही साष्टांग प्रणाम करता। अपने को हीन जाति का समझकर उनके घर में प्रवेश नहीं करता था। इस कारण नागमहाशय बड़े दुःखित हो जाते। वे भी उसको बड़ी

श्रद्धा के साथ नमस्कार करते और बड़े प्रेमपूर्वक उससे बातें करते। वह नागमहाशय का परामर्श लिए बिना कोई कार्य नहीं करता था। नागमहाशय के आदेश को वह खुदा का आदेश समझता और उनको साक्षात् 'पीर' मानता। उसकी ऐकान्तिक कामना थी कि नागमहाशय की कुछ सेवा करूँ, परन्तु नागमहाशय उसे उच्च श्रेणी का भक्त समझकर कभी अपनी सेवा नहीं करने देते थे।

सुरेशबाबू एक बार देवभोग आए हुए थे। उस समय उन्होंने इस यवन साधु को देखा था। नागमहाशय ने इस यवन के सम्बन्ध में उनसे कहा था, "भगवान के दरबार में जाति-वर्ण का भेद नहीं है। भगवान के लिए सभी समान हैं। जो भगवान की शरण जाते हैं और सच्चे हृदय से उन्हें पुकारते हैं, वे फिर किसी भी नाम या भाव का सहारा लेकर साधना क्यों न करें, भगवान उन पर अवश्य कृपा करते हैं। संसार के नाना मत, नाना पन्थ, केवल ईश्वर की ओर जाने के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। यदि मन सच्चा हो और निष्ठा पक्की हो, तो फिर किसी भी भाव का आश्रय लेकर भगवान को पाया जा सकता है।"

नागमहाशय की अमोघ कृपा से जिन-जिनके जीवन-प्रवाह की गति बदल गई थी, उनमें देवभोग के श्री कालीकुमार भुँइया अन्यतम थे। बाल्यकाल में कालीकुमार बहुत गरीब थे। उनकी माता एक ब्राह्मण के घर में नौकरानी थी। उस ब्राह्मण के प्रयत्न से कालीकुमार को देवभोग के एक धनी गृहस्थ रतनबाबू ने गोद ले लिया। कालीकुमार युवावस्था में बड़े चंचल स्वभाव के थे। अपने स्वभाव-दोष के कारण वे अपना सब कुछ खोकर राह के भिखारी बन गए। नागमहाशय के सम्पर्क में आने पर

भी उनकी वह यौवन-सुलभ चंचलता पूर्ण रूप से दूर नहीं हुई। इसी लिए नागमहाशय पहले-पहल उनकी ओर देख तक नहीं सकते थे। कालीकुमार अपने किए हुए अपराधों पर सोच करते हुए दुःखित मन से सदा नागमहाशय के घर में बैठे रहते थे। एक दिन मैंने देखा, कोई बात उठने पर कालीकुमार नागमहाशय के घर के खम्भे पर अपना सिर पटकने लगे। पर नागमहाशय ने उधर आँख उठाकर देखा तक नहीं, प्रत्युत कहा, "जिसका जैसा कर्म है, भगवान उसे वैसा ही फल देते हैं।" मैंने इसके पहले नागमहाशय का ऐसा कठोर भाव और कभी नहीं देखा था। मैं कातर हो कालीकुमार को स्नेह-भरी दृष्टि से देखने के लिए उनसे विनती करने लगा। जिन्होंने कभी मेरी प्रार्थना नहीं टाली, वे ही आज इस प्रकार कठोर बने रहे—उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी।

कालीकुमार और नागमहाशय में दूर का कोई सम्बन्ध भी था। कालीकुमार उनके हाव-भाव का हूबहू अनुकरण कर सकते थे। नागमहाशय के समान वे सर्वदा हाथ जोड़े हुए रहते और नीचे दृष्टि किए हुए रास्ता चलते। उनके गले में तुलसी की माला थी। धीरे-धीरे उन्हें संसार से उपरति हो गई और वे वृन्दावन चले गए। वहाँ से लौटने के बाद उन्हें नागमहाशय स्नेह की दृष्टि से देखने लगे। वे अभी भी बीच-बीच में तीर्थ-भ्रमण करने निकलते हैं और सदैव नागमहाशय के पवित्र जीवन-वेद का स्मरण-अनुसरण करते हुए काल-यापन करते हैं।

नागमहाशय को भेंट देने के लिए एक दिन कालीकुमार बहुतसी चीजें मजदूर के सिर पर रखाकर उनके घर लाए। उस दिन सुरेशबाबू वहीं थे। वे कहते हैं कि नागमहाशय ने काली-

कुमार से बहुत विनती करके वह सारा सामान लौटा दिया। इतना ही नहीं, उस दिन उन्होंने कालीकुमार को अपने घर निमन्त्रण देकर मेरे साथ भोजन कराया।

नागमहाशय से परिचय होने से पूर्व की बात है, एक वर्ष सत्यगोपाल ठाकुर ढाका में कीर्तन करने आए। मैंने और हर-प्रसन्न मजुमदार ने सबसे पहले उन्हीं के मुख से नागमहाशय के बारे में सुना। अतः हम दोनों उनके साथ साधु-दर्शन करने देवभोग गए। देवभोग पहुँचते सन्ध्या हो गई। दूसरे दिन सबेरे सत्यगोपाल के घर में कीर्तन आरम्भ हुआ। हम लोगों ने देखा, एक व्यक्ति अत्यन्त दीन-हीन वेश में आए और सत्यगोपाल को साष्टांग प्रणाम किया। सत्यगोपाल ने भी उनको साष्टांग प्रणाम किया। तब हम लोगों को पता चला कि ये ही नागमहाशय हैं। कीर्तन चलने लगा। बीच-बीच में नागमहाशय को भावावेश हो आता। ऐसा भाव हमने और कभी नहीं देखा था। कीर्तन समाप्त होने पर नागमहाशय 'जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण' कहते हुए अपने घर की ओर चल पड़े। हरप्रसन्नबाबू और मैं उनके पीछे-पीछे हो लिए।

हरप्रसन्नबाबू उस समय ढाका की जिला-कचहरी में नौकरी करते थे। वे प्रायः प्रति शनिवार को ढाका से नागमहाशय को देखने देवभोग आते। वर्षाकाल में उधर का भाग जलमय हो जाता है। अतः उस समय प्रत्येक शनिवार को नागमहाशय एक नाव लेकर नारायणगंज चले जाते और श्रीलक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर के निकट उनकी बाट देखते रहते। हरप्रसन्न ढाका से रेलगाड़ी द्वारा नारायणगंज आते और वहाँ से नागमहाशय उन्हें नौका में बिठाकर नाव स्वयं खेते हुए अपने घर ले जाते। इन

पर हरप्रसन्नबाबू बड़ी आपत्ति करने लगे। अन्त में एक शनिवार को उन्होंने नाव पर चढ़ना ही अस्वीकार कर दिया। अतः स्थिर हुआ कि अब से एक लड़का रखा जायगा। तब से वह लड़का ही उन्हें प्रति शनिवार को देवभोग ले आता और सोमवार को नारायणगंज पहुँचा जाता। कुछ समय बाद हरप्रसन्नबाबू का नारायणगंज में तबादला हो गया। उस समय कुछ महीने वे देवभोग में ही रहे। कुछ समय पश्चात् वे फिर से ढाका चले गए। पर शनिवार को नागमहाशय के दर्शन करने के उनके क्रम में कोई अन्तर नहीं पड़ा। वे वहाँ से पहले की ही भाँति सर्वदा देवभोग आते रहते थे।

किसी कारणवश एक समय हरप्रसन्नबाबू का मस्तिष्क फिर-सा गया। अतः उन्हें छुट्टी लेनी पड़ी। उनकी पत्नी बड़ी चिन्तित हो गईं और उन्हें नागमहाशय के पास ले आईं। नागमहाशय ने उस भक्त-दम्पति को अभय दिया। इसके कुछ ही समय बाद हरप्रसन्न का विकार दूर हो गया।

देह-त्याग करने के दो-तीन दिन पहले नागमहाशय ने हरप्रसन्नबाबू से कहा था, "देखो, श्रीरामकृष्ण देव सचमुच ईश्वर के अवतार थे।" भक्तों में हरप्रसन्न ही नागमहाशय के सबसे प्रिय थे। नागमहाशय कहते, "हरप्रसन्न का जैसा वीरभाव है, वैसा ही उसका भक्ति-भाव भी है।" पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्दजी भी हरप्रसन्न के भक्ति-भाव पर मुग्ध थे। नागमहाशय का आदर्श-जीवन उनमें जितनी मात्रा में उतरा था, उतना और किसी में नहीं था। उनको देखने से और उनके मुँह से "कृपा, कृपा, अहैतुक कृपा!"—शब्द सुनने से नागमहाशय आँखों के सामने झूलने लगते हैं। उनकी दीनता, भक्ति-भाव, प्रेमोच्छ्वास, सेवा

आदि सभी नागमहाशय की स्मृति को जगा देते हैं। वे बचपन से ही देव-द्विज के प्रति भक्ति रखते थे। उन्होंने बहुतसे संगीत रचे हैं और भावावेश में कभी-कभी उन गीतों को गाया करते हैं।

नागमहाशय के ब्रह्मलीन होने के कुछ घण्टे पहले हरप्रसन्न बाबू देवभोग छोड़कर चले गए; क्योंकि नागमहाशय का अन्तकाल देख सकना उनके कोमल स्वभाव के लिए सम्भव नहीं था। जन्मभूमि छोड़कर वे ढाका में रहने लगे। बीच में कुछ दिनों तक उन्होंने उत्कल में नौकरी की थी।

श्री नटवर मुखोपाध्याय नागमहाशय के अन्तिम दिनों में उनके पास आए थे। वे देवभोग में ही रहते थे, इसलिए सदैव नागमहाशय के पास रहने की उन्हें सुविधा थी। नटवर पहले बड़े उच्छृंखल थे, पर तो भी उनमें भक्ति का बीज था। उनका विश्वास था कि नागमहाशय अवतार हैं। नागमहाशय ने अपने पिता के श्राद्ध के समय अपना मकान रेहन रख दिया था। उनकी पत्नी ने नटवरप्रमुख भक्तों की सहायता से बड़े कष्ट से मकान को छुड़ाया था। नटवर के प्रयत्न से नागमहाशय की समाधि पर एक कुटिया बना दी गई है, उसमें नागमहाशय के व्यवहार में आनेवाली सभी वस्तुएँ सुरक्षित हैं तथा उनकी भस्म आदि भी वहीं जमीन में गड़ी हुई है। बेलुड़ मठ का अनुकरण करते हुए नटवर ने यहाँ नागमहाशय की भोग-राग सहित पूजा प्रचलित कर दी है। वे जिस बात को उचित समझते हैं, उसके लिए अपना सर्वस्व भी दे देने एवं उसे कार्य में परिणत करने में जरा भी पीछे नहीं हटते हैं।

नटवर ने एक बार एक नाटक रचा। उसका विषय था—भक्तों के लिए भगवान का नर-देह धारण करना और अधम-

पतितों का उद्धार करना। देवभोग में यह नाटक खेला गया था और नागमहाशय उसे देखने गए थे। इस नाटक में नटवर ने नागमहाशय की अपार दया और असाधारण नम्रता अंकित की थी।

नागमहाशय ने नटवर को कुछ-कुछ शास्त्र-ग्रन्थ पढ़ने का उपदेश दिया था। गुरु की कृपा से नटवर में शास्त्र-मर्म समझने और धारण करने की अलौकिक प्रतिभा दीख पड़ती है। परन्तु वे नागमहाशय को छोड़ और किसी को नहीं मानते। वे बीच-बीच में नौकरी करते हैं, पर अधिकांश समय भगवान को आत्मसमर्पण कर निश्चिन्त मन से रहा करते हैं। वे अधिकतर देवभोग में ही रहते हैं। नागमहाशय की पत्नी उनकी सलाह लिए बिना कोई कार्य नहीं करतीं। नटवर सदैव उनकी देख-रेख करते हैं। उनके ही प्रयत्न से नागमहाशय की पत्नी उनके साथ वृन्दावन, काशीधाम आदि तीर्थों के दर्शन कर आई हैं। उनके लिए यदि प्राण देने की भी नौबत आ जाय, तो भी नटवर तनिक भी पीछे नहीं हटने के। नागमहाशय के भक्त उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। वे बीच-बीच में कलकत्ता जाते रहते हैं और श्रीरामकृष्ण देव के भक्तों की चरण-धूलि लेकर लौट आते हैं। परन्तु सुख और दुःख, जीवन और मरण में नागमहाशय ही उनके एकमात्र भरोसा और आधार हैं। जिन्होंने नागमहाशय की स्मृति सजग रखने के लिए अपना जीवन निछावर कर दिया है, वे निश्चय ही वन्दनीय हैं।

नागमहाशय के और एक भक्त थे—श्री अन्नदा ठाकुर। वे भी श्रीरामकृष्ण देव के भक्तों में अच्छी तरह परिचित थे। वे पढ़े-लिखे तो नहीं थे, पर भक्ति-विश्वास उनमें कूट-कूटकर भरा था। मुंशीगंज के पास किसी गाँव में उनका जन्म हुआ था।

अवसर पाते ही वे नागमहाशय के दर्शन करने चले आते। इस पर उनके घरवाले आपत्ति करते, पर वे किसी का कहना मानते नहीं थे। उनके मन में जो काम करने की इच्छा होती, उसे पूरा किए विना वे चैन से नहीं वैठ सकते थे। कामचोरी उनमें नाम-मात्र को नहीं थी। दूसरों के लिए अपने प्राण तक दे देने में वे हिचकते नहीं थे। नागमहाशय उनके अदम्य उत्साह, अजेय साहस, निष्कपट भक्ति और सरल विश्वास की प्रशंसा करने में शतमुख हो जाते। उन पर नागमहाशय की अपार कृपा थी।

हरप्रसन्नबाबू जिस समय ढाका में रहते थे, उस समय अन्नदा उनके यहाँ कुछ दिन तक थे। वहाँ के डिप्टी के साथ अन्नदावावू का परिचय था। कभी-कभी वे घूमते-घामते उस डिप्टी के घर चले जाते। उस समय अमेरिका से पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्दजी की यशोदुन्दुभि भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक गूँज रही थी। अन्नदाबावू ने स्वामीजी के सम्बन्ध में नागमहाशय से कई बातें सुनी थीं। एक दिन जब वे डिप्टी के घर गए, तो वातचीत के प्रसंग में स्वामीजी की वातें उठीं। डिप्टी स्वामीजी पर अनुचित कटाक्ष करने लगा। अन्नदाबावू ने शान्त स्वर से कहा, "देखो, तुम ऐसा न सोचना कि तुम डिप्टी हो इसलिए मैं तुम्हारी वात का प्रतिवाद नहीं करूँगा। सिद्ध महात्मा नागमहाशय जिनकी प्रशंसा करते शतमुख हो जाते हैं, जिन्होंने अपनी तपस्या और विद्या के बल से अमेरिका में भारी हलचल मचा दी है, जिनके गौरव से हमारे देश का सिर ऊँचा हुआ है, उनकी तुम इस प्रकार व्यर्थ निन्दा करके क्यों पाप के भागी होते हो?" पर कोई फल न हुआ। डिप्टी उनकी वातों की अवहेलना कर पुनः स्वामीजी पर कटाक्ष

करने लगा। तव तो अन्नदाबाबू अपने को सँभाल न सके, उसके सामने खड़े हो उग्र स्वर में बोले, "One word more against Swamiji and you are done for."—(स्वामीजी के विरुद्ध अगर एक भी शब्द और निकाला, तो तुम्हारी जान की खैर नहीं!) उनकी वह उग्रमूर्ति देखकर डिप्टी का चेहरा फीका पड़ गया; उसकी बोली मुँह में ही अटकने लगी, वह तुतलाते हुए बोला, "अरे भाई, मैंने दिल्लगी की और तुम बुरा मान गए!" अन्नदाबाबू बिना एक शब्द बोले वहाँ से निकल आए और जीते-जी उस डिप्टी का फिर मुँह तक न देखा।

नागमहाशय का अन्तकाल जब निकट आ गया, तो अन्नदा-बाबू बड़े व्याकुल हो गए और वे श्रीमाताजी (श्रीरामकृष्ण-भक्त-जननी) के पास नागमहाशय के जीवन की भिक्षा माँगने गए। उस समय माताजी जयरामबाटी में थीं। अन्नदाबाबू तारकेश्वर से पैदल जयरामबाटी गए और वहाँ से पुनः पैदल तारकेश्वर आकर वे गिरीशबाबू से मिलने कलकत्ता चले गए। वहाँ से जब वे देवभोग लौटे, तब तक नागमहाशय ब्रह्मलीन हो चुके थे। यह देख उनके हृदय को बड़ा धक्का लगा। 'नाग-महाशय के अन्तिम समय में उन्हें देख न सका' यह कह-कहकर वे शेष जीवन-भर अपने आपको धिक्कारते रहे।

अन्नदाबाबू के एक छोटा भाई था। उसके सम्बन्ध में उन्हें बड़ी चिन्ता थी। वह ठीक अपने बड़े भाई के विपरीत था। अन्नदाबाबू विशेष आचारनिष्ठ नहीं थे, वे पढ़े-लिखे भी नहीं थे। उनका भाई विद्वान् और बड़ा आचारवान् था, पर उसके हृदय में भक्ति-भाव बिलकुल न था। अन्नदाबाबू सदैव कहते, "आप लोग आशीर्वाद दें, जिससे इसकी भगवान

श्रीरामकृष्ण देव के चरणों में भक्ति हो।" नागमहाशय के अन्तिम काल में अन्नदाबाबू का भाई उनसे मिलने आया था। एक रात को उसने और मैंने ईशोपनिषद् का पाठ करके नाग-महाशय को सुनाया। वह एक समय बेलुड़ मठ भी गया, पर अपने अहंकार के कारण वह कहीं भी साधु-कृपा का अधिकारी न हो सका। अन्नदाबाबू कहते, "यह अपने जीवन में बड़ा दुःख पायगा।" और बात भी ठीक वैसी ही हुई थी।

नागमहाशय के ब्रह्मलीन होने के नौ वर्ष पश्चात् पेचिश की बीमारी से अन्नदाबाबू की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उन्हें नागमहाशय के भक्तों को देखने की बड़ी इच्छा हुई। यह मालूम होते ही हरप्रसन्नबाबू उनके पास दौड़े आए। उनको देखकर अन्नदाबाबू के आनन्द का ठिकाना न रहा, वे बोले, "दादा, शरीर छूटने में अब देर नहीं है। आशीर्वाद दो, जिससे यह देह बदलकर शीघ्र ही प्रभु रामकृष्ण के कार्य के लिए फिर से आ सकूँ!" और यह कहकर वे गद्‌गद-कण्ठ से श्रीरामकृष्ण और नागमहाशय का नाम-स्मरण करने लगे। थोड़ी ही देर बाद उनकी जीवन-ज्योति बुझ गई।

अन्नदाबाबू के ही कारण हरप्रसन्न को उड़ीसा में नौकरी मिली थी। अन्नदाबाबू नागमहाशय के भक्तों के लिए अपने प्राण तक देने को प्रस्तुत रहते थे।

श्रीमती हरकामिनी के पति श्री कैलासचन्द्र दास भी अपनी सहधर्मिणी की ही भाँति, जीवन के सारे सुख-दुःख के प्रसंगों में नागमहाशय पर भार-भरोसा रखकर निश्चिन्त रहते थे। कैलासबाबू एक प्रकार से नागमहाशय के संसार के अभिभावक ही थे। बाजार करना, मकान की मरम्मत करना,

आवश्यकतानुसार कर्ज लेकर संसार चलाना आदि कार्यों में वे नागमहाशय की पत्नी के प्रधान सहायक थे। वे वीरभाव के साधक थे, अतः वीच-वीच में सुरा का भी व्यवहार करते थे। पर कभी-कभी उसकी मात्रा सीमा को भी पार कर जाती थी। उनको ठीक मार्ग पर लाने के लिए नागमहाशय वड़े प्रयत्नशील रहते थे। कैलासवावू का सुरा-पान का दोष दूर करने के लिए एक दिन वे स्वयं मद्य खरीद लाए और उनको वार-वार पिलाने लगे। उस दिन से कैलासवावू ने फिर कभी भी शराव छूई तक नहीं।

नागमहाशय किसी की भी सेवा ग्रहण नहीं करते थे, परन्तु कैलासवावू के सामने उनकी कुछ नहीं चलती थी। वे नागमहाशय पर दवाव डालकर अपनी इच्छानुसार उन्हें खिलाते-पिलाते। देवभोग में ऐसा कोई नहीं था, जो उनसे डरता न हो।

एक वात कैलासवावू को विलकुल सहन नहीं होती थी और वह थी—कपटाचरण। उन्हें किसी प्रकार का कपट प्रिय न था, वे कहते, "जव अन्तर्यामी भगवान सव कुछ देख रहे हैं, तव भला किससे छल-कपट किया जाय?"

नागमहाशय ब्रह्म से लेकर तृण पर्यन्त सारे विश्व को अपना सेव्य समझते थे और स्वयं को उन सवका सेवक। पर कैलासवावू के लिए तो दूसरी ही वात थी। वे तो नागमहाशय को अपना सेव्य समझते और अपने आपको उनका सेवक। जव तक नागमहाशय जीवित रहे, तव तक उनकी आज्ञा का पालन करना ही कैलासवावू के जीवन का एकमात्र व्रत था।

श्रीयुत पार्वतीचरण मित्र नाते में नागमहाशय के दामाद लगते थे। मुंशीगंज के वकील राजकुमार नाग की कन्या

विनोदिनी से ,उनका विवाह हुआ था। इस दम्पति पर नाग-महाशय की विशेष कृपा थी। उनकी कृपा से इन लोगों ने काफी आध्यात्मिक उन्नति कर ली थी। इन लोगों को नाग-महाशय 'लक्ष्मीनारायण' कहा करते थे। ये दोनों ही नागमहाशय को ईश्वरीय अवतार मानते। सुनते हैं, विनोदिनी को नागमहाशय की कृपा से कई प्रकार के अलौकिक दर्शन हुए थे। पार्वतीबाबू अब भी नागमहाशय की पत्नी को हर महीने कुछ रकम भेजा करते हैं।

नागमहाशय के अन्तिम दिनों में राजकुमार नाग उनके पास हमेशा आते-जाते थे। इस समय वे नागमहाशय को ही अपने जीवन का आदर्श बनाकर धर्म-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। ये नागमहाशय के सम्बन्ध में बहुतसी अलौकिक बातें बताया करते हैं। उनमें से एक यह है:—

नागमहाशय के आँगन में जिस दिन गंगा का स्रोत धरती फोड़कर निकला था, उस दिन एक-दो भक्तों ने कालीघाट की कालीमाई को वहाँ प्रत्यक्ष देखा था। उस दिन मानो सारा कालीघाट वहाँ पर प्रतिबिम्बित हो गया था और भक्तों को ऐसा प्रतीत हुआ था कि वे कालीघाट पर स्नान कर रहे हैं! राजकुमारबाबू ने लेखक को यह भी बतलाया था कि दीनदयाल की मृत्यु के समय नागमहाशय ने कहा था, "यदि बाबा की मृत्यु-यातना आँखों से देखनी पड़े, तब तो इस जन्म में किए हुए धर्म-कर्म व्यर्थ ही हुए! हे भगवान रामकृष्ण! बाबा को सद्गति देकर अपना पतितपावन नाम सार्थक करो!" इत्यादि।

पार्वतीचरण बड़े एकान्तप्रिय थे। वे धर्म के सम्बन्ध में किसी के साथ तर्क-वितर्क नहीं करते थे। नागमहाशय को

महापुरुष जानकर उन्होंने उनके चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया था। हम लोग जब बहस में लगे रहते, उस समय पार्वतीबाबू अकेले बैठकर अपने इष्टदेव के चिन्तन में मग्न रहते। नागमहाशय से उन्होंने कभी कुछ नहीं माँगा। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि नागमहाशय सर्वज्ञ हैं और मुझे जब जिस बात की आवश्यकता होगी, वे स्वयं होकर पूरी कर देंगे। नागमहाशय के अन्तिम दिन पार्वतीबाबू देवभोग में ही थे। नागमहाशय की स्मृति-रक्षा के काम में वे सर्वदा मुक्तहस्त थे। नागमहाशय की पत्नी पर भी उनकी अटल भक्ति थी।

नागमहाशय के पड़ोसी श्री जगद्बन्धु भुँइया नित्य नागमहाशय के यहाँ आकर भागवत-पुराण आदि का पाठ करते एवं भक्तों के साथ संकीर्तन में भाग लेते। नागमहाशय सदा उनकी भक्ति और दीनता की प्रशंसा किया करते। जगद्बन्धु पर उनकी बड़ी कृपा थी। वे नित्य स्वयं लालटेन लेकर उनको उनके घर तक पहुँचा आते। जगद्बन्धु अब देवभोग छोड़कर अन्यत्र रहते हैं और कभी-कभी देवभोग आकर नागमहाशय की समाधि के दर्शन कर जाते हैं।

नागमहाशय के बाल्यकाल के मित्र श्री कामिनीकुमार मुखोपाध्याय देवभोग के सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे गम्भीर प्रकृति के थे। नागमहाशय के प्रति अपनी अन्तर्निहित भक्ति को उन्होंने कभी शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं होने दिया। केवल एक समय मैंने उन्हें कहते सुना है, "नागमहाशय-जैसे महापुरुष के जन्म से हमारा देवभोग धन्य हो गया है!" कामिनीबाबू के पिता और नागमहाशय के पिता की आपस में घनिष्ठ मैत्री थी, अतः स्वभावतः ही उनके पुत्रों की भी घनिष्ठ मित्रता हो गई

थी। कामिनीबाबू जब नागमहाशय के घर आते, तब कोई विशेष बातचीत नहीं करते थे। वे चुप बैठे-बैठे तमाखू पीते रहते और बीच-बीच में नागमहाशय के मुँह की ओर देखा करते।

नागमहाशय के भक्त होने के कारण हम लोगों पर भी कामिनीबाबू और उनके पिता का विशेष स्नेह था। वे कभी-कभी हम लोगों को भोजन के लिए अपने घर बुला ले जाते थे।

एक दिन कामिनीबाबू नागमहाशय के समीप बैठकर गा रहे थे—"नील गगन में, मन्द पवन में कहाँ चले हो पंछी।" मैं तो गाना सुनकर मुग्ध हो गया। गायक का वह तन्मय-भाव आज भी मेरी आँखों के सामने झूल रहा है, उनका वह मधुर स्वर आज भी मेरे कानों में गूँज रहा है! नागमहाशय कोई भावमय गाना सुनने से बिलकुल तन्मय हो जाते थे। एक दिन उनका एक भक्त एक ऐसा ही गाना गा रहा था। नागमहाशय सुनते-सुनते भाव-समाधि में मग्न हो गए। समाधि से नीचे आने पर वे भक्त के लिए तमाखू भरते हुए बोले, "मैंने प्रत्यक्ष जगदम्बा को आपका गाना सुनते हुए इस घर में खड़ी हुई देखा। इसी जन्म में आप पर जगन्माता की कृपा होगी।"

और एक दिन की बात है। यही भक्त नागमहाशय के पास बैठकर जगदम्बा सम्बन्धी एक गाना गा रहा था। नागमहाशय "जय माँ आनन्दमयी" कहते हुए चुटकियाँ बजाने लगे। कुछ समय बाद वे केवल इस एक चरण को बारम्बार दुहराने लगे—"जगदम्बा के मुख हेरत ही दुःख अहा सब बीते! मम अन्तर के दुःख अहा सब बीते!" भक्त को ऐसा लगा, मानो नागमहाशय जगन्माता की मूर्ति को प्रत्यक्ष देख रहे

हैं। तत्पश्चात् नागमहाशय भावावेश में बारम्बार कहने लगे — "प्रसाद कहता है, दुर्गा का नाम लेकर मैं तो महाप्रयाण के लिए तैयार होकर बैठा हूँ।" भक्त ने जब ये सब बातें नागमहाशय की पत्नी को बतलाई, तो उन्होंने कहा, "बेटा, साधन-भजन की तो बात ही छोड़ दो। उनकी जब जिस देवी-देवता को देखने की इच्छा होती है, उसी समय वह विशिष्ट देवता उनके सामने प्रकट हो जाता है। स्वयं उन्होंने मुझे यह बात कितनी ही बार बतलाई है।"

यदि कहें कि एक प्रकार से सारा देवभोग ही नागमहाशय का भक्त था, तो यह कोई अत्युक्ति न होगी। सब लोग नित्य उनके दर्शन करने आते। उनमें श्री सत्यगोपाल ठाकुर के भाई महिमाचरण ठाकुर और नौकौड़ी दत्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

नागमहाशय के पुरोहित के पुत्र अश्विनी चक्रवर्ती नागमहाशय के पास आकर कभी-कभी शास्त्र-पाठ और भक्ति-चर्चा में रात-रात बिता देते थे। संकीर्तन में अश्विनीबाबू की विशेष रुचि थी। कीर्तन करते-करते वे प्रेम में मतवाले होकर नृत्य करने लगते। आजकल ये ही नागमहाशय की समाधि पर रखे हुए उनके चित्र की नित्य पूजा-अर्चा आदि करते हैं।

नागमहाशय के पड़ोसी गोपालचन्द्र चक्रवर्ती उनके प्रथम भक्त थे। नागमहाशय के साथ बहुत से भक्तों का परिचय इन्हीं के द्वारा हुआ था, अतः वे सब भक्त इनके ऋणी हैं। ये पहले नारायणगंज में जूट का व्यापार करते थे। बाद में उन्होंने व्यवसाय छोड़ दिया और साधन-भजन में लग गए। पहले उन्होंने एक स्त्री से दीक्षा ली थी। दीक्षा लेकर उन्होंने मधुर-भाव की

साधना की। इस साधना के फल से उनमें एक अपूर्व आकर्षण शक्ति आ गई। भक्त-मण्डली में वे सत्यगोपाल के नाम से परिचित थे। वे मृदंग बहुत अच्छा बजाते थे और उनका गला बड़ा मधुर था। वे कीर्तन करते हुए विभिन्न स्थानों में घूमते रहते थे। उनके कीर्तन में ऐसी अद्‌भुत मोहिनी शक्ति थी कि पाषाणहृदय भी द्रवित हो जाता था। वे लगभग तीन वर्ष तक नागमहाशय के साथ रहे। उनके सम्पर्क में आते ही सत्यगोपाल के जीवन में परिवर्तन हो गया, उन्होंने वैष्णव-तन्त्रोक्त वामाचार-साधन छोड़ दिया और भक्तिमार्ग के अनुयायी बन गए। उन पर नागमहाशय का विशेष प्रेम था। कभी-कभी नागमहाशय उनको साथ ले घने जंगल में चले जाते और वहाँ साधन-भजन करते। नागमहाशय कहते, "इनमें बहुत भक्ति-विश्वास है, पर इनकी भोग-वासना अभी पूरी गई नहीं।" सत्यगोपाल मन-ही-मन नागमहाशय को अपना गुरु मानते, पर नागमहाशय अपने प्रति 'गुरु' का सम्बोधन तक सह नहीं सकते थे, इसलिए सत्यगोपाल प्रकट रूप से कुछ कह नहीं पाते थे। नागमहाशय के सम्बन्ध में उनकी धारणा थी कि वे वेद की साकार प्रतिमा हैं और आकाश की भाँति महिमामय हैं। इसी लिए वे सर्वदा "श्री गुरु वेदाकाश की जय" कहकर नागमहाशय का जय-जयकार करते। नागमहाशय की कृपा से भक्त-मण्डली में उनका बड़ा मान था। नारायणगंज के पास धर्मगंज नामक स्थान में आश्रम स्थापित कर उन्होंने वहाँ अपने जीवन के शेष तीन वर्ष बिताए। उनके अनेक शिष्य हुए। कुछ दिन हुए, पीठ पर अस्थिव्रण हो जाने से उनकी मृत्यु हो गई।

एक बार सत्यगोपाल ने नागमहाशय के लिए कुछ आम

भेजे। नागमहाशय उस समय घर पर नहीं थे। उनकी पत्नी ने आम लानेवाले व्यक्ति को आम वापस ले जाने के लिए बहुत कहा, पर वह व्यक्ति न माना और घर के दरवाजे के पास आम रखकर चला गया। जब नागमहाशय घर लौटे, तो उन्हें सारी बात मालूम हुई। उस समय वर्षा-काल होने के कारण एक घर से दूसरे घर तक जाने के लिए भी नाव की आवश्यकता होती थी। उस दिन नागमहाशय को कोई नाव नहीं मिली। अतः वे तैरते हुए ही सत्यगोपाल के घर गए और बहुत अनुरोध करके उनको आम वापस दे आए।

अष्टम अध्याय

महासमाधि

सन् १९०० ई. में नागमहाशय नित्यक्रम के अनुसार वार्षिक पूजा के लिए बाजार करने कलकत्ता न आ सके। विविध कार्यों में लगे रहने के कारण मैं भी उस वर्ष देवभोग न जा सका। आश्विन और कार्तिक दो महीने निकल गए। अगहन के अन्तिम भाग में मुझे नागमहाशय की पत्नी का एक तार मिला, जिसमें उन्होंने मुझे तुरन्त बुलाया था। उस दिन शनिवार था, दोपहर को मुझे वह तार मिला। दूसरे दिन रविवार को 'रामकृष्ण-मिशन' सभा में मुझे "वेदोक्त धर्म" पर एक निवन्ध पढ़ना था। यह कार्य छोड़कर कैसे जाऊँ—इस प्रकार की किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में मैं सोच-विचार कर ही रहा था कि इतने में स्वामी अद्भुतानन्दजी मेरे घर पधारे। तार देखकर वे बोले, "वेद पर भाषण देने के लिए तुम्हारा सारा जीवन पड़ा हुआ है, पर नागमहाशय की देह छूट जाने पर फिर कभी तुम उस देवदुर्लभ महापुरुष के दर्शन न कर सकोगे।" बस, मैंने उसी दिन देवभोग जाना स्थिर कर लिया।

श्रीरामकृष्ण-भक्त श्री हरमोहन मित्र ने कुछ पैसे की सहायता दी। उससे नागमहाशय के लिए सिंघाड़े का आटा और अनार खरीदकर मैं उसी रात को रेलगाड़ी से रवाना हो गया और दूसरे दिन सन्ध्या के पूर्व देवभोग पहुँच गया।

घर में जाकर देखता हूँ कि नागमहाशय पूर्व ओर के बरामदे में एक फटी गुदड़ी पर पड़े हुए हैं। इधर घर में रजाई-गद्दी आदि का अभाव न था! एक तो शीतकाल, उस

पर खुले मैदान से बहनेवाली कँपकँपी ला देनेवाली ठंडी हवा ! ऐसी दशा में, सौ-सौ छिद्रवाले टट्टे से घिरे बरामदे में रात बिताना रोगी की तो कौन कहे, अच्छे चंगे, नीरोग मनुष्य के लिए भी अत्यन्त अनिष्टकर है। मैंने उन्हें उस अवस्था में देखकर उनकी पत्नी की ओर देखा। वे बड़ी दबी आवाज में बोलीं, "बेटा, जिस दिन से इनमें उठने-बैठने की शक्ति नहीं रही, तब से ये कमरे के अन्दर ही नहीं आए—इसी प्रकार बाहर पड़े हुए हैं। पूजा के पहले से उनकी शूल-पीड़ा बढ़ गई थी, उस पर पेचिश रोग हो गया है। रोग को बढ़ते देखकर मैंने उनकी सम्मति से तुम्हें तार भेजा।"

अपनी पत्नी से मेरे आने की बात सुनकर नागमहाशय बोले, "प्रभु रामकृष्ण की कृपा से मेरी अन्तिम इच्छा भी पूरी हो गई।" मुझे देखकर वे उठकर बैठ गए। मेरी आँखों में आँसू देखकर वे मुझे ढाढ़स बँधाते हुए बोले, "आप जब आ गए हैं, तब तो अब सब मंगल ही होगा।" फिर बोले, "हाय ! हाय ! आप आए और इस देह से मैं आपकी सेवा न कर सका। मैं सचमुच आपका अपराधी हूँ।" यह कह उन्होंने अपनी पत्नी से मेरे लिए दूध, मक्खन आदि की व्यवस्था करने के लिए कहा। मैं रोते-रोते वहाँ से उठ गया।

अपनी बीमारी की बात नागमहाशय कभी अपने मुँह पर नहीं लाते थे। केवल एक बार उन्होंने अपनी पत्नी को संकेत से बताया था, "मेरा प्रारब्ध-कर्म अब नष्ट होते चला है, बहुत थोड़ा ही शेष है।" भाद्रपद के अन्त से उनका स्वास्थ्य बहुत ही खराब हो गया। वे दिन में केवल दो-चार ग्रास अन्न लेते थे और रात में उपवास करते थे। क्रमशः उनका शरीर बहुत

दुर्बल हो गया—हड्डी-हड्डी दिखने लगी। उस जीवित कंकाल की ओर देखकर उनकी पत्नी उसांसें लेने लगतीं। इस पर वे कहते, "इस क्षुद्र हाड़-मांस के पिंजरे के लिए इतनी व्याकुल मत होओ।" उनको औषधि देने के लिए उनकी पत्नी ने बहुत प्रयत्न किया, पर सब व्यर्थ हुआ। औषधि की बात निकालने पर वे कहते, "प्रभु रामकृष्ण कहते थे—'हिंचे साग* को साग में नहीं गिना जाता, उससे कोई अनिष्ट नहीं होता'।" पथ्य-औषधि के रूप में वे बस उसी का थोड़ासा रस ले लेते।

उनके ब्रह्मलीन होने के तेरह दिन पहले मैं देवभोग पहुँचा था। मैं किसी भी प्रकार उन्हें घर के अन्दर सोने के लिए राजी न कर सका। बीच-बीच में उन्हें मार्मिक पीड़ा होती थी, पर एक क्षण के लिए भी मैंने उन्हें व्याकुल होते नहीं देखा। श्रीरामकृष्ण देव की बातों को छोड़ उनके अधरों पर बीमारी या अन्य किसी प्रकार की बात ही नहीं रहती थी।

ये तेरह दिन मैं उनके पास-ही-पास रहा। कभी स्तव पढ़कर उन्हें सुनाता, कभी उनके पास बैठकर गीता, भागवत, उपनिषद् आदि का पाठ करता, कभी जगन्माता के गीत गाता और कभी कीर्तन करने लगता। वे सुनते-सुनते बीच-बीच में समाधिमग्न हो जाते और उसी स्थिति में घण्टा-डेढ़ घण्टा बीत जाता। समाधि उतरने पर वे बीच-बीच में सोकर उठे हुए शिशु की भाँति 'माँ-माँ' कहकर रो उठते और उनकी देह पर आठों सात्त्विक विकार स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाते। कभी-कभी गम्भीर समाधि से उतरने पर कहते, "सच्चिदानन्द अखण्ड चैतन्य! अखण्ड चैतन्य!"

---

* एक प्रकार की तरकारी।

नागमहाशय की बीमारी बढ़ने लगी। उनकी वहिन शारदामणि, उनकी सास, साली, कैलासवाबू और कैलासवाबू के दामाद आदित्यबाबू आदि सब लोग उनकी सेवा करने के लिए देवभोग में एकत्र हुए, पर उन्होंने किसी को भी अपनी सेवा नहीं करने दी। उनकी पत्नी तन-मन से उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगीं।

मेरे देवभोग आने पर वे मेरे हाथ से पथ्य-पानी आदि लेने लगे। कलकत्ते से सिंघाड़े का आटा आदि लाते समय मेरे मन में उठा था कि शायद वे वह सब ग्रहण नहीं करेंगे, पर वैसा नहीं हुआ। मेरे अपने हाथ से तैयार करके देने पर उन्होंने खाने में कोई आपत्ति नहीं की।

नटवर, हरप्रसन्न, पार्वतीचरण, अन्नदा आदि उनके दर्शन करने आते ही रहते, किसी-किसी दिन वहाँ रह भी जाते। इसके सिवा, नारायणगंज के अनेक सज्जन और सरकारी कर्मचारी उनकी खबर लेने आया करते थे। उन लोगों को उदास देखकर नागमहाशय कहते, "हाय, हाय! इस हाड़-मांस के ढाँचे को देखने के लिए आप लोगों ने क्यों इतना व्यर्थ कष्ट उठाया! यह देह और अधिक दिन नहीं रहेगी।" उनकी यह बात सुनकर उनकी पत्नी ने रोते-रोते मुझसे कहा था, "जीवन में इनके मुँह से कभी झूठी बात नहीं निकली। जब ये कह रहे हैं कि उनका शरीर अब और अधिक दिन नहीं टिकेगा, तब ये अवश्य ही महाप्रयाण करनेवाले हैं।"

इस भयंकर बीमारी में भी नागमहाशय अपने यहाँ आए हुए अतिथियों के भोजन आदि के सम्बन्ध में पूरी निगरानी रखते थे। किसके लिए किस प्रकार का भोजन बनेगा, किसको

कहाँ सुलाना होगा, बाजार से क्या-क्या लाना होगा—आदि सब बातें वे अपनी पत्नी को बतला देते। कैलासबाबू बाजार से सामान खरीदकर ले आते, और हमें ऐसे विकट समय में भी उत्तमोत्तम पदार्थ खाने पड़ते। मृत्यु के पाँच दिन पहले नाग-महाशय ने कैलासबाबू को ग्वाले के घर भेजकर मेरे लिए दही-दूध मँगवाया था और तीन दिन पूर्व भी मुझे रुचनेवाले पदार्थ मँगवाए थे !

दिन के अधिकांश भाग में उनके समीप ही बैठा रहता था। उनके मुख से अविरत निकलता रहता, "भगवान दयामय ! भगवान दयामय !!" उनकी दारुण पीड़ा देखकर मुझे लगता कि भगवान दयामय नहीं, निष्ठुर हैं। एक दिन की बात है, मैं उनकी शय्या के पास बैठा हुआ इसी प्रकार सोच रहा था कि उन्होंने मानो मेरे मन की बात भाँपकर कहा, "भगवान की अपार करुणा के सम्बन्ध में आप कभी भी मन में सन्देह को स्थान न दें। मेरी इस देह से दुनिया का अब और क्या भला होने का ? इस समय तो खाट पकड़ ली है—आप लोगों की सेवा भी न कर सका ! इसी लिए भगवान श्रीरामकृष्ण दया करके इस देह को पंचभूतों में मिला दे रहे हैं !" तत्पश्चात् वे क्षीण स्वर में धीरे-धीरे कहने लगे, "देह जाने और दुःख जाने, मन ! तू आनन्द से रह।" जब कभी वे मुझे उदास देखते, तो कहते, "आप भी क्या इस सूखी ठठरी की चिन्ता कर रहे हैं ! इस हाड़-मांस के पिंजरे के लिए कभी सोच न करें। जगदम्बा का नाम-गान कीजिए, प्रभु रामकृष्ण की चर्चा कीजिए—अब तो यही भवरोग की एकमात्र दवा है !" मैं अपने मन के आवेग में गाने लगा, "आमाय दे मा पागल करे, आर काज नेइ मा

ज्ञानविचारे" (माता ! अपने प्रेम में तू मुझे पागल बना दे ! ज्ञान-विचार लेकर अब भला क्या करूँगा !) । मैं विभोर होकर गा रहा था । गाते-गाते मानो मेरी बाह्य-संज्ञा चली गई । कुछ देर बाद सुना—नागमहाशय की पत्नी मुझे पुकार रही हैं। मैंने उनकी ओर देखा । उन्होंने नागमहाशय की ओर संकेत किया । मैं देखता हूँ—नागमहाशय उठकर बैठे हुए हैं, उनकी दृष्टि नासिकाग्र पर स्थिर है और नेत्रों के कोनों से प्रेमाश्रु वह रहे हैं ! गाना सुनते-सुनते वे समाधिस्थ हो गए हैं ! वे कब उठकर बैठे, मुझे कुछ मालूम ही न पड़ा । उन्हें इस अवस्था में देख मुझे भय हुआ । समाधि शीघ्र उतरी । वे और न बैठ सके । उनकी पत्नी और मैंने मिलकर उन्हें लिटा दिया । वे उस समय भी गुनगुना रहे थे—"आमाय दे मा पागल करे !"

रोग दिनों-दिन बढ़ता चला । आहार एक प्रकार से बन्द हो गया । वे कभी-कभी सुतुही से थोड़ासा सिंघाड़े का आटा लेकर फाँक लेते । अब उनके पास रात में किसी-न-किसी का रहना आवश्यक हो गया । इसलिए उनकी पत्नी और मैं पारी-पारी से जागने लगे । मैं रात के दूसरे भाग में जागता । कभी-कभी कातर होकर नागमहाशय से कहता, "मुझ पर कृपा करते जाइए । आपके बाद संसार में भला और किसका मुँह ताकूँगा !" वे मुझे अभय देते हुए कहते, "आपको डर किस बात का ! जब आप प्रभु रामकृष्ण के दरबार में आ पड़े हैं, तब वे कृपा करेंगे ही । मंगल चाहनेवाले का कभी अमंगल नहीं होता ।"

उस समय स्वामी सारदानन्द श्रीरामकृष्ण मिशन के कार्य के सिलसिले में ढाका आए हुए थे । वे लगभग रोज ही नाग-

महाशय को देखने आते और उनकी सेवा-शुश्रूषा आदि के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना देते। स्वामी सारदानन्दजी श्रीराम-कृष्ण देव के लीला-पार्षदों में से थे, इसलिए नागमहाशय उन्हें कभी भी अपनी सेवा नहीं करने देते थे। एक दिन सारदानन्दजी ने नागमहाशय को तीन गाने सुनाए। सुनते-सुनते नागमहाशय समाधिस्थ हो गए। सारदानन्दजी के कथनानुसार नागमहाशय के कान में काली का नाम सुनाया गया। तब उनकी समाधि उतरी।

महासमाधि के कुछ दिन पूर्व नागमहाशय ने काली-पूजा करने की इच्छा प्रकट की। शनिवार की रात को पूजा का समय स्थिर किया गया। घर में नानाविध अभाव होने पर भी उनकी पत्नी पूजा की सामग्री जुटाने में लग गई। प्रतिमा तैयार करने के लिए आदेश दे दिया गया। बाजे के लिए पेशगी दे दी गई। तात्पर्य यह कि पूजा के आयोग में थोड़ीसी भी कसर न रखी गई।

पूजा की रात को नटवर और मैं उपस्थित थे। प्रतिमा आने पर स्वामी सारदानन्दजी ने कहा, "नागमहाशय उठकर माता की प्रतिमा देखने तो जा न सकेंगे, इसलिए अभी प्रतिमा ले जाकर उन्हें दिखा आ। फिर मण्डप में माता की स्थापना करना।" हम लोग रक्षा-काली की प्रतिमा को उठाकर उनके सिरहाने के पास ले गए और उनसे बोले, "काली की पूजा करनी है न। लीजिए, प्रतिमा ले आई गई है—माता आपके सिरहाने खड़ी है।" नागमहाशय आँखें बन्द कर पड़े हुए थे। प्रतिमा को देखते ही वे 'माँ, माँ' कहते हुए गम्भीर समाधि में मग्न हो गए। स्वामी सारदानन्दजी के उपदेशानुसार पूर्ववत् उनके कान में काली माता का नाम सुनाया गया, पर इस बार

उनकी समाधि नहीं उतरी। नाड़ी का चलना वन्द हो गया और हृदय की धड़कन भी वन्द हो गई। यह देखकर उनकी पत्नी रोने लगीं, वोलीं, "काली-पूजा का निमित्त लेकर ये हमें छोड़ गए!" हम लोग भी रोने लगे। स्वामी सारदानन्दजी वोले, "आप लोग डरिए मत। कुछ ही देर में इनकी समाधि उतर जायगी।"

लगभग दो घण्टे वाद नागमहाशय समाधि से नीचे आए। वे "माँ आनन्दमयी! माँ आनन्दमयी!" कहते हुए एक छोटे वालक के समान रोने लगे। कुछ समय वाद पूछा, "काली-पूजा हो गई?" मैंने कहा, "काली माता सन्ध्या से आपके सिरहाने ही है। अनुमति हो, तो माता को मण्डप में ले जायँ।" उनकी सम्मति से हम लोग प्रतिमा को मण्डप में ले गए। नगाड़ा वजने लगा। रात को दस बजे पूजा आरम्भ हुई। नागमहाशय की अनुमति ले पुरोहित ने प्राण-प्रतिष्ठा की। माता को वलि देने के बदले मिश्री का और मद्य के वदले भाँग का नैवेद्य लगाया गया। माता की षोड़शोपचार से पूजा होने पर पुरोहित ने निर्माल्य लाकर नागमहाशय के सिर पर रखा। थोड़ी देर तक उन्हें भावसमाधि लग गई, पर शीघ्र ही वे सहजावस्था में आ गए। स्वामी सारदानन्दजी पूजा के पहले ही ढाका लौट गए थे।

रात के अन्तिम पहर में उनकी शय्या के पास वैठा हुआ था। उनसे कहा, "आज आपकी अवस्था देखकर ऐसा लगा कि अब शायद आप और न लौटेंगे।" वे क्षीण स्वर में वोले, "प्रारव्ध का क्षय हुए विना देह नहीं जाने की।"

रक्षा-काली की पूजा से हममें कुछ आशा का संचार हुआ था। सोचा था, माता अवश्य उनकी रक्षा करेगी। हमारे मन का भाव जानकर नागमहाशय वोले, "माता कृपा करके

आज रक्षा-काली की मूर्ति में आविर्भूत हुई हैं। इस हाड़-मांस के पिंजरे की रक्षा करने के लिए नहीं, वरन् जो सब मंगलेच्छु दया करके यहाँ पद-धूलि देने आए हैं, उनकी संकट से रक्षा करने के लिए। मंगलमयी माता आप सबका मंगल करें।" उनकी रक्षाकाली-पूजा का हेतु हम लोगों को तब विदित हुआ। दूसरे दिन श्रीरामकृष्ण-चर्चा करते समय वे मुझसे बोले, "दया-मय प्रभु रामकृष्ण के चरणों में आप सबका भक्ति-विश्वास बढ़े। मैं ठहरा अनाड़ी ! पर वे अहैतुक कृपासिन्धु हैं। मुझे अक्षम जानकर उन्होंने आप होकर मुझ पर कृपा की है।" और यह कहकर वे "जय रामकृष्ण ! जय रामकृष्ण !!" कहते हुए श्रीरामकृष्ण देव को प्रणाम करने लगे।

पिता के श्राद्ध के लिए उन्होंने मकान रेहन रखकर जिस साहूकार से कर्ज लिया था, दूसरे दिन वह उनको देखने आया। उन्होंने हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया और बोले, "आपका कर्ज चुका न सका। यह शरीर और अधिक दिन तक न टिकेगा। आपकी दया से मैं पिता का श्राद्ध कर सका था। पर आप कोई चिन्ता न कीजिए। यह मकान अब आपका ही है। मीआद पूरी होते ही इस पर कब्जा कर लीजिए और खुशी से इसका उप-भोग कीजिए।" फिर अपनी पत्नी का उल्लेख करते हुए कहा, "शेष आयु वह अपने पिता के घर जाकर रहेगी।" नागमहाशय के ये वाक्य सुनकर साहूकार दुःख के साथ बोला, "आप इस सामान्य कर्ज के बारे में तनिक भी चिन्ता न करें। मैं पैसे के लिए नहीं आया, आपके दर्शन करने आया हूँ।" यह सुनकर नाग-महाशय ने "सभी प्रभु रामकृष्ण की दया है—अपार दया !" कहते हुए अपनी आँखें बन्द कर लीं।

साहूकार के चले जाने के लगभग तीन घण्टे पश्चात् सहसा नागमहाशय का भावान्तर हो गया। विस्तर पर छटपटाते हुए वे वड़वड़ाने लगे। ठंडी कड़ाके की पड़ रही थी, तो भी दो-दो पंखों से हवा करने पर भी उनको आराम न मिला। वे वारम्वार उठकर वैठने की इच्छा प्रकट करने लगे। एक वार नटवरवावू ने सहारा देकर उन्हें उठाकर विठा दिया। पर थोड़ी ही देर में उन्हें फिर लिटा दिया गया। नागमहाशय कुछ समय तक चुप रहे। तदनन्तर पुनः कुछ वड़वड़ाने लगे। उस समय नटवरवावू चले गए थे। उनके पास मैं और उनकी पत्नी दोनों वैठे हुए थे। इतने में एकाएक नागमहाशय "वचाओ, वचाओ" कहकर चिल्ला उठे। उनकी पत्नी रोते-रोते वोलीं, "आपने मुझसे कहा था न कि मृत्यु के समय इतनासा भी मोह मुझे स्पर्श न कर सकेगा ? तव भला आप इस प्रकार क्यों कर रहे हैं ?" मैं तो किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वैठा रहा। लगभग आध घण्टे वाद नागमहाशय कुछ स्वस्थ हुए और उन्हें झपकी-सी आने लगी। नींद का भाव कटने पर मैंने कपड़े की वत्ती से उनके मुँह में थोड़ासा गरम दूध चुआया।

नागमहाशय के उपर्युक्त "वचाओ, वचाओ" कहने का तात्पर्य जव मैंने स्वामी विवेकानन्दजी से पूछा, तो वे वोले, "उस समय तुम लोग केवल उनकी वाहरी अवस्था ही देख रहे थे, अन्दर की अवस्था का ज्ञान तो तुम लोगों को हो न सका। अन्दर में तो वे पूर्ण ज्ञान की अवस्था में थे। शरीर धारण करने से उसके साथ थोड़ा-वहुत जीव का धर्म भी आयगा ही। ऐसा न हो, तो उसे शरीरी कहते ही न वनेगा। इस प्रकार की अवस्था सभी महापुरुषों के जीवन में हुई है। इससे जीवन्मुक्त

नागमहाशय में कोई कमी नहीं आती। फिर यह भी बात है कि उन्होंने 'बचाओ' किस अर्थ में कहा—यह कैसे हमारी समझ में आय? हो सकता है, अनित्य देह को छोड़कर निजस्वरूप में लीन हो जाने के लिए ही उन्होंने इस प्रकार उद्वेगपूर्ण उद्गार निकाले हों।"

इस सम्बन्ध में गिरीशबाबू कहते, "श्रीरामकृष्ण के पार्षद कैवल्य या मुक्ति की इच्छा नहीं करते। यदि वे करें भी, तो भी उनकी मुक्ति नहीं होती। कारण, भगवान जब फिर से अवतार लेते हैं, तो उनके साथ उनके पार्षदों को भी देह धारण करके आना पड़ता है। नागमहाशय का संसार पर इतनासा भी मन नहीं था। मायामुक्त महापुरुष नागमहाशय यदि बचने की थोड़ीसी इच्छा न रखते, तो किसके बल पर वे फिर से भगवान के साथ नर-देह लेकर आ सकते? इसी लिए नागमहाशय ने फिर से नर-देह लेने की सामान्य इच्छा रखते हुए देह छोड़ी है। वह इच्छा भी केवल भगवान की लीला की पुष्टि के लिए ही है।" जो हो, मृत्यु के पूर्व और कभी भी मोह उन्हें स्पर्श न कर सका।

महासमाधि के तीन दिन पहले नागमहाशय ने मुझसे पंचांग देखकर यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त स्थिर करने के लिए कहा। उस समय मैं यह न समझ सका कि वे अपने महाप्रस्थान के लिए दिन ठीक करने को कह रहे हैं। पंचांग देखकर मैंने बतलाया, "पौष त्रयोदशी को सवेरे दस बजे के बाद यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त है।" नागमहाशय बोले, "आपकी अनुमति हो, तो उसी दिन महाप्रस्थान करूँ।" मैं तो यह सुनते ही स्तम्भित रह गया। मेरे प्राण अत्यन्त व्याकुल हो उठे। मैंने रोते हुए

उनकी पत्नी को यह बात कह सुनाई। वे बोलीं, "अब क्यों रोते हो, बेटा! अब तो वे रहते नहीं यह निश्चित है। तब उन्हीं की इच्छा पूर्ण हो, रामकृष्ण की इच्छा पूर्ण हो! वे ज्ञान-सहित देह छोड़ें, बस यही इच्छा है। इससे हम लोग आनन्दित होंगे!"

नागमहाशय शुभ मुहूर्त ठीक करके निश्चिन्त हो गए। मृत्यु के कुछ पूर्व रात के दो बजे के समय उनकी पत्नी, मैं और हरप्रसन्नबाबू उनकी शय्या के पास बैठे हुए थे और वे आँखें मूँदे हुए पड़े थे। सहसा आँखें खोलकर हड़बड़ाहट के साथ मुझसे बोले, "प्रभु रामकृष्ण आए हैं, आज मुझे तीर्थ-दर्शन करायँगे।" मुझे चुप देखकर वे फिर बोले, "आपने जो-जो तीर्थ देखे हैं, एक-एक करके उनका नाम लेते जाइए, मैं देखते जाऊँ।" मैं हाल ही में हरिद्वार गया था, उसी का नाम मैंने लिया। त्योंही नागमहाशय उत्तेजित-स्वर से बोले, "हरिद्वार—हरिद्वार! यह देखो, मैया भागीरथी कल-कल करती हुई पहाड़ से नीचे आ रही हैं! अहा! उनकी चंचल तरंगों से तीर के वृक्ष कैसे डोल रहे हैं! वह देखो उस पार चण्डी का पर्वत! ओ हो, माता के अंक में कितने घाट समा गए हैं! आप जरा रुकिए, मैंने आज बीस वर्ष से स्नान नहीं किया है, आज माता की गोद में स्नान करके मानव-जन्म सफल कर लूँ।" "गंगा, गंगा, माँ पतित-पावनी, माँ अघमतारिणी" कहते-कहते नागमहाशय गम्भीर समाधि में मग्न हो गए। उनके समाधि से उतरने पर मुझे ऐसा लगा कि वे सचमुच ही स्नान करके आ रहे हैं।

नागमहाशय ने दूसरे तीर्थ का नाम लेने के लिए कहा। मैं यंत्रवत् 'प्रयाग' कह गया। त्योंही वे "जय यमुने! जय

गंगे !" कहते हुए प्रणाम करने लगे। तत्पश्चात् बोले, "यहीं पर तो भरद्वाज का आश्रम था न? कहाँ, मुझे तो नहीं दिख रहा है! यह देखो, गंगा-यमुना की मिली हुई धारा! वह रहा उस पार का पर्वत! पर हाय! प्रभु रामकृष्ण मुझे भरद्वाज का आश्रम क्यों नहीं दिखा रहे हैं भला?" ऐसा कहकर मानो उन्हें झपकी-सी आई। फिर दो-तीन मिनट बाद बोले, "हाँ, यह तो रही मुनि की कुटिया!" पुनः कुछ क्षण चुप रहकर बोले, "माता, तुम राजराजेश्वरी हो! महाशक्ति की अवतार होकर इस प्रकार वन-वन में क्यों घूमती फिर रही हो भला? जय राम! जय राम!" कहते-कहते वे फिर से गम्भीर समाधि में चले गए। समाधि से उतरने पर मैंने 'सागरतीर्थ' का नाम लिया। वे मानो सगर-वंश का उद्धार आँखों के सामने देखने लगे। समुद्र-दर्शन करके बारम्बार प्रणाम करने लगे। फिर मैंने 'काशीक्षेत्र' का नाम लिया। त्योंही वे "जय शिव, जय शिव विश्वेश्वर! हर हर बम बम!" कहने लगे। फिर बोले, "अब मैं महाशिव में लीन हो जाऊँगा।" तत्पश्चात् 'जगन्नाथ'-क्षेत्र आया। नागमहाशय यह नाम सुनते ही बोले, "वह देखो ऊँचा मन्दिर! वह देखो, आनन्दबाजार में महाप्रसाद की खरीद-बिक्री चली है!" ऐसा लगा कि उन्होंने एक-दो बार श्री चैतन्य महाप्रभु का नाम भी लिया। इस प्रकार रात के चार बज गए। नागमहाशय को कुछ झपकी-सी लगी। दूसरे दिन सवेरा होने पर भी उनकी नींद नहीं खुली। गाँव के एक डाक्टर को बुलाया गया। उन्होंने आकर होमियोपैथी दवाई की एक पुड़िया दी। मैंने नागमहाशय को वह दवाई खिला दी। फिर कपड़े की बत्ती बनाकर उनके मुँह में थोड़ासा दूध चुआया।

यही उनका अन्तिम आहार था। तब मुझे स्मरण हुआ कि आज उनके जीवन का अन्तिम दिन है !

पौष त्रयोदशी को आठ बजे के बाद उन्हें पुनः-पुनः भाव-समाधि होने लगी। मैं उनके कान में अविराम श्रीरामकृष्ण-नाम सुनाने लगा। भगवान श्रीरामकृष्ण का चित्र उनके सामने रखकर बोला, "जिनके नाम पर आपने अपना सर्वस्व त्याग दिया है, यह देखिए उनका चित्र।" दर्शन करके उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। फिर अत्यन्त क्षीण-स्वर में बोले, "कृपा, कृपा—अहैतुकी कृपा !" ये ही उनके अन्तिम शब्द थे।

लगभग नौ बजे से नागमहाशय को ऊर्ध्वश्वास होने लगा, आँखें कुछ लाल हो गईं, ओंठ फड़कने लगे, मानो कुछ कह रहे हों। इसके आध घण्टे बाद उनकी दृष्टि एकाएक नासाग्र पर स्थिर हो गई। उनका सारा शरीर पुलकित होने लगा, शरीर पर के रोएँ खड़े हो गए और नयनों से प्रेमाश्रु झरने लगे ! धीरे-धीरे प्राणवायु मूलाधार चक्र से ऊपर उठने लगी—एक चक्र से दूसरे चक्र में आने लगी। नाभि से हृत्पद्म में आने पर उनकी साँस जोर से चलने लगी। तदनन्तर दस बजकर पाँच मिनट पर नागमहाशय महासमाधि में लीन हो गए। उनकी पत्नी मुझसे बोलीं, "इन्होंने अपनी पूरी आयु गृहस्थाश्रम में ही व्यतीत की है, इसलिए इनका अन्तिम संस्कार भी गृहस्थाश्रम-धर्म के अनुसार करना उचित होगा।" उनकी आज्ञानुसार कैलासबाबू, पार्वतीबाबू, आदित्यबाबू और मैं नागमहाशय को उठाकर बाहर ले आए और एक तखत पर उत्तम शय्या बिछाकर उन्हें उस पर लिटा दिया। अभी भी उनकी प्राणवायु धीरे-धीरे चल रही थी। बाहर लाने के पाँच-सात मिनट बाद वह भी बन्द

हो गई और खेल खत्म हो गया ! नागमहाशय इस जगत् को छोड़कर चले गए ! उनका मुखमण्डल अभी भी ज्योतिर्मय दिखाई देता था ! अर्धोन्मीलित नेत्रों के कोनों में प्रेमाश्रु विन्दु झलक रहे थे ! घर में कुहराम मच गया। मैंने नागमहाशय की पत्नी से कहा, "माँ, शान्त होओ, तुम्हें डर किस वात का ? तुम्हारा भार वे हम पर दे गए हैं। ये सव तो तुम्हारी ही सन्तान हैं—इनके मुँह की ओर देखकर धीरज धरो।" शोक का प्रथम आवेग कम होने पर, उनकी आज्ञानुसार कैलासवावू घृत, धूना और चन्दनकाष्ठ लाने नारायणगंज चले गए। महायज्ञ में पूर्णाहुति देने का पूरा आयोजन होने लगा।

अन्य भक्तों की सहायता से मैंने नागमहाशय की शय्या पर एक चँदोवा तान दिया। गाँव के वृद्ध अनुभवी लोगों ने आकर शव की परीक्षा की। देखा, शरीर अभी भी गरम है। उन्होंने पूछा, "अभी दाह-कर्म करना उचित है या नहीं ?" मैंने कहा, "नागमहाशय-जैसे महापुरुष के शरीर को कम-से-कम वारह घण्टे रखकर तत्पश्चात् उसका अग्नि-संस्कार करना उचित होगा।" कामिनी गांगुली के पिता श्री काशीकान्त गांगुली वयस में गाँव में सवसे वड़े थे। वे मुझसे सहमत हो गए। रात को दस वजे के वाद अग्नि-संस्कार करना निश्चित हुआ। तव तक वह पवित्र देह आँगन में ही रखी रही। कुछ समय वाद मेरे मन में आया, "अव तो कुछ ही देर में यह पवित्र मूर्ति भस्मरूप हो जायगी। अतः एक फोटो ले लेना उचित होगा।" फोटोग्राफर वुलाने के लिए एक मनुष्य नारायणगंज भेजा गया। फोटोग्राफर घर पर नहीं था। इसलिए उसके आते लगभग तीन वज गए। नागमहाशय के जीवित रहते हम लोग

किसी भी प्रकार उनका फोटो न उतरवा सके थे। यह बात उठाते ही वे कहते, "इस हाड़-मांस के ढाँचे का और क्या फोटो रखना ?" हाय ! हमें रोकनेवाली वह वाणी अव सदा के लिए नीरव हो गई है ! उनकी पवित्र देह को पुष्प-माला से सुशोभित कर सवकी सम्मति से दो फोटो लिए गए। इसी फोटो को देखकर प्रियनाथ सिंह ने एक तैल-चित्र तैयार किया। वह अभी भी नागमहाशय के घर में सुरक्षित है। इस पुस्तक में नागमहाशय का जो चित्र दिया गया है, वह इसी तैल-चित्र से खींचा गया है।

सूर्यास्त के पहले नागमहाशय की पत्नी ने फूल, विल्वपत्र, धूप-दीप, नैवेद्य आदि से नागमहाशय के चरणों की पूजा की। फिर उनकी सात वार प्रदक्षिणा करके अपने लम्वे केशों से उनके दोनों चरणों को पोंछा। हजारों बिल्वपत्र और अनेक प्रकार के पुष्पों से हम लोगों ने नागमहाशय के पवित्र शरीर को सजाया। तव तक नागमहाशय की मृत्यु की वार्ता गाँव-भर में फैल चुकी थी। चारों ओर से आवाल-वृद्ध-वनिता सभी उनके अन्तिम दर्शन करने दौड़े आए। गाँव-भर में हाहाकार मच गया—गाँव का प्रत्येक घर शोकसागर में डूव गया।

रात को दस वजे के वाद चन्दन की चिता रचकर शास्त्रोक्त रीति से नागमहाशय की पूत देह अग्नि को समर्पित कर दी गई। तत्पश्चात् उस जलती चिता में मैं बिल्वपत्र लेकर व्याहृति मन्त्र के साथ हवन करने लगा। इसी बीच स्वामी सारदानन्दजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने चिता के सामने साष्टांग प्रणाम किया। तीन घण्टे के भीतर नागमहाशय की मर्त्य देह पंचभूतों में मिल गई। उनकी पत्नी ने चिता बुझाई।

उनकी पत्नी के अतिरिक्त हम लोगों में से किसी ने

स्नान नहीं किया। उस पवित्र शरीर की पूत भस्म को स्पर्श कर हम सभी शुद्ध हो गए! तव स्नान की भला क्या आवश्यकता? अपने पिता की मृत्यु के तीन वर्ष पश्चात्, ५३ वर्ष ४ माह ७ दिन की आयु में अपनी जन्मभूमि देवभोग में नागमहाशय की मृण्मय देह पंचत्व को प्राप्त हो गई और चिह्नस्वरूप बच रही केवल भस्मराशि!

दूसरे दिन स्वामी सारदानन्दजी के आदेश से वह पवित्र भस्मराशि एक पीतल की कलसी में भरी गई और उसके साथ नागमहाशय का स्वरचित एक गीत उसमें रखकर वह कलसी वहीं चिताभूमि में गाड़ दी गई। मृत्यु के पूर्व नागमहाशय ने जिस काली की पूजा की थी, स्वामी सारदानन्दजी ने माता की उसी प्रतिमा को उनकी समाधि पर स्थापित कर देने के लिए कहा। उसके ऊपर एक सुन्दर चँदोवा तान दिया गया।

नागमहाशय के ऋण के सम्वन्ध में पूछ-ताछ करके और आवश्यक सूचना देकर सारदानन्दजी ढाका चले गए। चौथे दिन मैं भी उस चिर शान्तिमय स्थान से सदा के लिए विदा लेकर कलकत्ता वापस चला आया।

परिशिष्ट

नागमहाशय के रचे हुए कुछ गीत हम पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

(१)

गिरिवर !
आर कबे जाबे उमारे आनिते कैलासभवने।
ना हेरिया विधुमुख हृदये दारुण दुःख,
कतो आर सहिबो जीवने ॥
शुनिया शिवेर रीति, हृदये उपजे भीति,
भूत प्रेत संगे साथी, थाके नाकि श्मशाने ॥
कि कबो ताहार गुण, कपाले ज्वले आगुन,
सिद्धिते बड़ो निपुण, आपन पर ना जाने ॥
दीन अकिंचने भाषे, तुष्ट करि आशुतोषे,
आनह प्राणेर गौरी, नैले मरिबो पराणे ॥

भावार्थः—गिरिवर ! उमा को लाने कैलासभवन और कब जाओगे ? बहुत दिनों से मैंने उस चन्द्रमुखी को नहीं देखा है, इसलिए मन में बड़ा ही दुःख है। इस जीवन में और कितना सहूँ ! कहते हैं, शिव श्मशान में रहता है और भूत-प्रेत ही उसके संगी-साथी हैं। उसकी यह सब बातें सुनकर तो हृदय काँप उठता है। और उसके गुणों का भी क्या कहूँ—उसके कपाल में आग जलती है, भाँग छानने में बड़ा निपुण है, अपना-पराया कुछ नहीं जानता ! तुमसे विनती करती हूँ, जाओ और आशुतोष को मधुर शब्दों से तुष्ट करके मेरे प्राणों की प्रिय गौरी को ले आओ, नहीं तो मैं न बचूँगी !

(२)

(काली) आमि दिने दिने, क्षुण्णमने,
भवज्वालाय ज्वले मरि।
दया करो निज गुणे आर जे ज्वाला सइते नारि॥
ऍखन देखा दिवे कि नाइ, कि करिवे बोलो ताइ,
दीने दरशन चाइ, दोहाई लागे त्रिपुरारी॥
शक्ति भक्ति किछुइ नाइ, निजगुणे देखो चाइ,
अकिंचने देहो ठाँइ, श्रीचरणे दया करि॥

भावार्थ:—काली! मैं कितना दुःखी हूँ; भव-ज्वाला मुझे दिन-पर-दिन जलाती जा रही है! माता, तुम्हारी दया अपार है, मुझ पर दया करो। अब तो मुझसे यह ज्वाला सही नहीं जाती। माता, मुझे सच-सच बताओ, तुम मुझे दर्शन दोगी या नहीं; यह दीन तुम्हारे दर्शन चाहता है। न मेरे कुछ शक्ति है, न भक्ति; माता, तुम दया करके मेरी ओर अपनी कृपा-दृष्टि फेरो और इस अकिंचन को अपने श्रीचरणों में स्थान दो।

(३)

काली कोथा गो तारिणी, त्रिगुणधारिणी।
कैलासवासिनी, हरमनोरमा, हरमनमोहिनी॥
कृपा करो मा दीने, पुण्यहीनञ्च जने,
स्वगुणे निस्तारकारिणी;
अपरा जन्महरा, भक्तिमुक्तिदायिनी,
तारा ब्रह्ममयी परात्परा वाञ्छातीत-प्रदायिनी॥
(ओगो मा) के जाने तोमार, महिमा अपार,
अनन्त गुणाधार, अव्यक्त अचिन्त्यरूपिणी।
कतो जोगी ऋषि जोगासने, दिवानिशि ऍकमने,

भाविये ना पाय ध्याने, निखिल-ब्रह्माण्ड-जननी ॥
आमि दीन, ज्ञानहीन, क्रियाहीन, भजनविहीन,
कि जानि माहात्म्य, निजगुणे त्राण करो दिये चरणतरणी ॥

भावार्थः—ऐ त्रिगुणधारिणी, तारण करनेवाली माँ ! ऐ कैलास में रहनेवाली, हर के मन में रमण करनेवाली, शिव के मन को मोह लेनेवाली काली ! तुम कहाँ हो ? माता, तुम अपनी ही दया से स्वयं होकर (जीवों को) तार देती हो । माँ, मैं पुण्यहीन हूँ, इस दीन पर दया करो । तुम भव-बन्धन तोड़ देती हो, भक्ति और मुक्ति प्रदान करती हो; हे तारा, हे ब्रह्ममयी, हे परात्परा, तुम वह भी दे सकती हो, जो इच्छा के भी अतीत है । तुम अनन्त गुणाधार हो, वाचा और मन के परे हो । माता ! तुम्हारी महिमा अपार है, तुम्हें भला कौन जान सकता है ? जगन्माते, तुम्हीं से तो यह निखिल ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है । कितने ऋषि-मुनि योगासन में बैठकर एकाग्रचित्त से तुम्हारा ध्यान करते हैं, फिर भी तुम्हें सोच नहीं पाते ! फिर मैं तो ठहरा दीन, ज्ञानहीन, क्रियाहीन, भजनविहीन; मैं भला तुम्हारा माहात्म्य क्या जानूँ ! अब तो तुम्हारे ही चरणों का मुझे सहारा है; माता, तुम अहेतुक दयामयी हो, मेरी रक्षा करो ।

(४)

(ओगो) श्यामा मा आमार—
केवल मुखेर कथा होलो सार ।
तुमि जे आमार सर्वस्व धन,
ता तो अन्तरेर सहित भाविना ऍकबार ।
मने करि छाड़ि विषय वासना,

सार करि तव नाम-उपासना,
किन्तु कर्मफेरे किछु मा होलो ना,
निजगुणे एवे करो मा निस्तार ॥
मनेरे वुझाइ जतो, किछुते ना हय नत,
अकिंचन पदाश्रित, जन्त्रणा सहे ना आर ॥

भावार्थः—ओ माँ श्यामा! मैं केवल कोरी वातें ही करता हूँ। तुम मेरी सर्वस्व हो यह तो मैं एक वार भी हृदय से नहीं सोचता। सोचता हूँ, यह सव विषय-वासना छोड़ दूँ, तुम्हारे नाम-गान और पूजा-उपासना को ही लेकर रहूँ, किन्तु, माँ, कर्म के चक्कर में पड़कर कुछ भी न हो सका। अव तो तुम्हीं मुझ पर कृपा करके मुझे तारो। मन को कितना समझाता हूँ, पर वह किसी तरह झुकता नहीं। माता, इस अकिंचन को अपनी शरण में ले लो, अव तो यन्त्रणा और नहीं सही जाती।

(५)

आजि एकि हेरि शुभ अपरूप दरशन।
वराय आसिलेन मा, करुणामयी,
करिपृष्ठे करि आरोहण ॥
तप्त-कांचन-वरणी, हास्यजुता त्रिनयनी,
वदने झलके कतो वेशर मणि,
गले हार गजमुक्ता रक्तवस्त्र परिधान ॥
नाना अलंकार भूषित, रूपे त्रिजगत् मोहित,
दश भुजे सुशोभित
आयुध तन्त्रे शंख चक्र धनुर्वाण ॥
अमल-कमल-दल, निन्दित-चरण-तल,
किवा ताय सुनिर्मल,

नखर छले प्रकाशे सित शशी सुशोभन ॥
दिवानिशि ओरूप हेरि, वाल, जुवा आदि करि,
जतो सव नर नारी
पाशरिलो शोक दुःख सवे पुलकितमन ॥
भावे चित गदगद, दिये जवा कोकनद,
पूजे मायेर अभय पद,
अतुल शोभा सम्पद जोगिगणेर हृदयधन ॥
कलुष नाशिये तारा,
पुण्यस्रोते भासाले धरा,
अकिंचने दिये धरा,
देहो ओ राँगा चरण ॥

भावार्थः—आज मैं यह कैसा शुभ और मनोहर दृश्य देख रहा हूँ ! करुणामयी माँ हाथी पर सवार होकर धराधाम में आई हैं। उनका वर्ण तप्त कांचन के समान है, उनके अधरों पर मधुर हास्य खेल रहा है, उनके तीन नेत्र हैं और उनका मुख मानो कितने मणियों की आभा से झलमला रहा है। गले में गजमुक्ता का हार है और वे रक्तवस्त्र परिधान पहने हुई हैं। शरीर नाना अलंकारों से सुशोभित है। उनके रूप से तीनों लोक मोहित हो रहे हैं। उनके दस हाथों में शंख, चक्र, धनुष-बाण आदि आयुध शोभा पा रहे हैं। उनके सुन्दर चरण-तल अमल-कमल-दलों को भी लजा रहे हैं और उनके नखों से निकलनेवाला प्रकाश चन्द्रमा की शुभ्रोज्ज्वल किरणों को भी मात कर रहा है। आवाल-वृद्ध-वनिता दिन-रात उस रूप से नेत्र ठंढे कर रहे हैं; उनके दुःख-शोक सव चले गए हैं और हृदय आनन्द से उमड़ा पड़ता है। भाव से चित्त गद्‌गद हो गया है

और जवा एवं कमल के फूलों से माता के उन अभय-पदों की पूजा करता है, जो अतुल शोभा की निधि हैं और योगियों के हृदय की सम्पत्ति हैं। हे तारा, तुमने कलुष का नाश कर इस धरती को पुण्य-स्रोत से सराबोर कर दिया है। माता, इस अकिंचन को दर्शन दो और अपने श्रीचरणों में स्थान दो।

हमारे अन्य प्रकाशन



१-३. श्रीरामकृष्णवचनामृत—तीन भागों में—अनु० पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रथम भाग (तृतीय संस्करण)—मूल्य ६); द्वितीय भाग (द्वि. सं.)—मूल्य ६); तृतीय भाग (द्वि.सं.)—मूल्य ७)

४-५. श्रीरामकृष्णलीलामृत—(विस्तृत जीवनी)—(तृतीय संस्करण)— दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य ५)

६. विवेकानन्द-चरित—(विस्तृत जीवनी)—(द्वितीय संस्करण)— सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, मूल्य ६)

७-८. धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द—दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य २॥)

९. परमार्थ-प्रसंग—स्वामी विरजानन्द, (आर्ट पेपर पर छपी हुई)
कपड़े की जिल्द, मूल्य ३॥)
कार्डबोर्ड की जिल्द, " ३।)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

१०. विवेकानन्दजी के संग में (वार्तालाप)—शिष्य शरच्चन्द्र, द्वि. सं., ५।)

११. राजयोग (पातंजल-योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्या सहित) द्वि. सं., २॥)

१२. भारत में विवेकानन्द—भारतीय व्याख्यान—(द्वि.सं.) ५)
१३. ज्ञानयोग (द्वि. सं.) ३)
१४. पत्रावली (प्रथम भाग) २=)
१५. पत्रावली (द्वितीय भाग) २=)
१६. देववाणी २=)
१७. धर्मविज्ञान (द्वि.सं.) १॥=)
१८. हिन्दू धर्म (द्वि. सं.) १॥)
१९. कर्मयोग (तृ. सं.) १।=)
२०. प्रेमयोग (तृ. सं.) १।=)
२१. भक्तियोग (च. सं.) १।=)
२२. स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप १।=)
२३. आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग (च. सं.) १।)
२४. परिव्राजक (च. सं.) १।)
२५. प्राच्य और पाश्चात्य (च. सं.) १।)
२६. महापुरुषों की जीवनगाथायें (प. सं.) १।)

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर – १, म. प्र.